MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 3

वर्ष 3, अंक 12, अक्तूबर-2017
आश्विन, वि. सं. 2074, ₹ 50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

6-13
आत्मचेतना और भारतीय सृष्टि विज्ञान
प्रो. सुरेंद्र भटनागर

14 - 27
भारतीय अर्थ-संस्कृति की प्रतिमा : लक्ष्मी
डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

28 - 35
लघु क्षेत्र केंद्रित विकास दर्शन एवं अर्थतंत्र
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

36 - 43
नारी संतो के साहित्य में मूल्य चेतना
डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

44-51
धर्म दर्शन और न्याय प्रज्ञा
मुन्ना लाल जैन

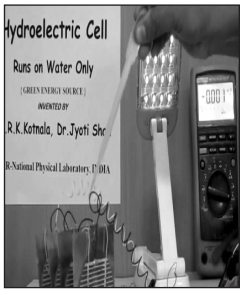

52-55
हरित ऊर्जा : पानी से बिजली बनाने वाला सेल
गरिमा कोटनाला

56-61
तुलसी का औषधीय व धार्मिक महत्त्व
डॉ. एस. के. उपाध्याय

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्प्लेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-935561-0-8

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-27565018
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 4

अथ

देश को स्वाधीन हुए सत्तर वर्ष हो गए हैं। यह अवसर सिंहावलोकन तथा स्वाकलन के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इन सात दशकों में हमने कुछ ऐसी महती उपलब्धियाँ अर्जित की हैं जिनसे हम गर्वित व विश्व विस्मित है। दूसरी ओर हमारी असफलताओं की सूची भी कम लंबी नहीं। स्थिति कुछ-कुछ पैराडाक्सिकल है। फिर भी मैं उन निराशावादियों से सहमत नहीं, जिन्हें अपने देश में कुछ भी सकारात्मक व प्रगतिशील दिखाई नहीं देता।

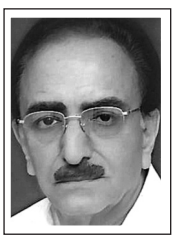

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

भारत को आजादी मिलने से पहले विंसेंट चर्चिल ने तंज कसते हुए कहा था कि भारतीय अभी उतने परिपक्व नहीं हुए कि देश व आजादी को संभाल सकें । सात दशकों की इस संघर्षमयी यात्रा में हम अपनी राष्ट्रीय अस्मिता, परंपराओं व लोकतंत्र को बचाते हुए भविष्य की ओर दृढ़ता से अग्रसर हैं। इस अवधि में हमारे देश में 16 बार संसदीय चुनाव संपन्न हुए। कई बार सत्ता हस्तांरित हुई, लेकिन शांतिपूर्ण ढ़ंग से, मतदान के द्वारा। हमारी स्वाधीनता के साथ ही अस्तित्व में आए पड़ोसी मुल्क के प्ररिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो इसे और भी अच्छी तरह समझा जा सकता है।

आज विश्वपटल पर भारत की सकारात्मक पहचान प्रतिष्ठित है। जी-20, ओ.इ.एस.डी. तथा ब्रिक्स जैसे वैश्विक मंचों पर भारत की उपस्थिति प्रभावी ढ़ंग से अंकित होती है। पिछले दशक में हमारी अर्थव्यवस्था बड़ी तेज गति से विकसित हुई। फलतः भारत आज विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है। 1947 में हमारी 90 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे थी, जबकि अब के आधुनिक भारत में यह 22.5 प्रतिशत है। तब हमारी साक्षरता दर 14 प्रतिशत थी, जो अब बढ़कर 74 प्रतिशत हो चुकी है। 'इसरो' के माध्यम से हमारे मेधावी व प्रातिभ वैज्ञानिकों ने हमें विकसित राष्ट्रों–अमेरिका, रूस, फ्रांस आदि की पंक्ति में ला खड़ा किया है। पृथ्वी, अग्नि, नाग व ब्रह्मोस जैसी आधुनिक मिसाइलें बनाकर हमारी सामरिक क्षमता को बढ़ाया है। सैन्य शाक्ति की दृष्टि से अब हम विश्व में चौथे स्थान पर हैं।

आज हमारे यहाँ 12 हजार पेशेवर शिक्षण संस्थान हैं, जिनमें 40 लाख सीटें उपलब्ध हैं। तब एम्स जैसा आयुर्विज्ञान संस्थान खोलने की भी हमारी सामर्थ्य नहीं थी। न्यूजीलैंड के अनुदान से ही यह स्थापित हो पाया था। आज देश में आधुनिक चिकित्सीय सेवाएँ उपलब्ध हैं, जिनका लाभ गत् वर्ष 83 देशों से आने वाले दो लाख रोगियों ने भी उठाया। हमारे डॉक्टरों की अंतरराष्ट्रीय साख है। इसी प्रकार आज गूगल, माइक्रोसॉफट, ग्लोबल बांउड्रीज, एडोब, हरमन इंटरनेशल, मास्टर कार्ड सदृश वैश्विक कंपनियों के प्रबंधन को पिचाई, सत्य नडेला, संजय झा, शांतनु नारायण, दिनेश पालिवाल व अजय बंगा जैसे प्रातिभ

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 5

भारतपुत्रों ने संभाला हुआ है। इसे सपेरों व जाहिलों का देश कहने वाले अब अपना मुँह छिपा रहे हैं।

तब हम अपने नागरिकों की भूख मिटाने में भी असमर्थ थे, अनाज के लिए हम अमेरिका जैसे देशों की अनुकंपा पर निर्भर थे। आज भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा खाद्यान्न-उत्पादक देश बन चुका है। दुग्ध उत्पादन में हम पहले स्थान पर हैं। पहले हरित क्रांति आई, स्वामीनाथन जी के अनुसंधान से, फिर श्वेत क्रांति आई, कुरियन जी के प्रयासों व प्रताप से।

इन 70 सालों में जहाँ हमने विकास के उत्तुंग शिखरों को छुआ है, वहीं दूसरी ओर अब भी कई क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ खड्डे व खाइयाँ हैं, जिन्हें हम अब तक नहीं पाट सके। कई दशकों से हमारा देश आतंकवाद से जूझ रहा है, लेकिन हम इस समस्या से निस्तारण नहीं पा सके। कश्मीर से विस्थापित पंडितों को हम अब तक बसा नहीं सके। दूसरी ओर नक्सलियों के घातक प्रहारों को हम कुंद नहीं कर सके। रेलवे का सबसे बड़ा नेटवर्क होने के बावजूद यहाँ आए दिन गाड़ियाँ पटरियों से उतर रही हैं। रेलवे के एक-तिहाई फाटक यमराज के मुँह की तरह खुले पड़े हैं। चिकित्सीय सुविधाओं के विस्तारण के बावजूद प्रशासनिक प्रमाद के चलते गोरखपुर बाल-संहार जैसे कांड हो रहे हैं। देश में समृद्धि व जी.डी.पी के बढ़ने के बावजूद सारा वित्त-वैभव हवेलियों तक सीमित है। झुग्गी-झोंपड़ी वाले पहले जैसे मुँह ताक रहे हैं। किसानों की आत्महत्याएँ व स्त्रियों से सामूहिक बलात्कार सरकार व प्रशासन की तमाम कार्रवाइयों तथा समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों व कृषि विशेषज्ञों के चिंतन-मनन के बावजूद थमने का नाम नहीं ले रहे हैं। इससे ज्यादा शर्मसार करने वाली स्थिति क्या हो सकती है।

इस अशोभनीय स्थिति के लिए शिथिल व उत्तरदायित्व विहीन प्रशासन तंत्र तथा दूरदृष्टि व इच्छा शक्ति विहीन नेतृत्व जिम्मेदार है, जिनके लिए 'स्व' तो सुमेरु है लेकिन 'राष्ट्र' है राई। जन सामान्य भी अपनी भूमिका से बच नहीं सकता। काम के लिए प्रतिबद्धता व राष्ट्र से अभिन्नता की भावना हमसे तिरोहित होती जा रही है। भ्रष्टाचार की सहज सामाजिक स्वीकृति इस दौर की बड़ी खतरनाक सच्चाई है। यदि यह यों ही सक्रिय रही तो यह स्थिति देश के लिए बड़ी भयावह हो सकती है। समय रहते हमें चेतना होगा।

नई युवा पीढ़ी ही इस दिशा में कुछ कर सकती है जिसकी सामाजिक व राजनीतिक चेतना तो जाग्रत है, लेकिन राष्ट्रीय चेतना अभी कुछ-कुछ सुषुप्त है। उसे जगाने के लिए उनमें देशानुराग का जज्बा भरने के लिए शिक्षकों, शिक्षण संस्थाओं व सामाजिक संगठनों को आगे आना होगा।

•

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 6

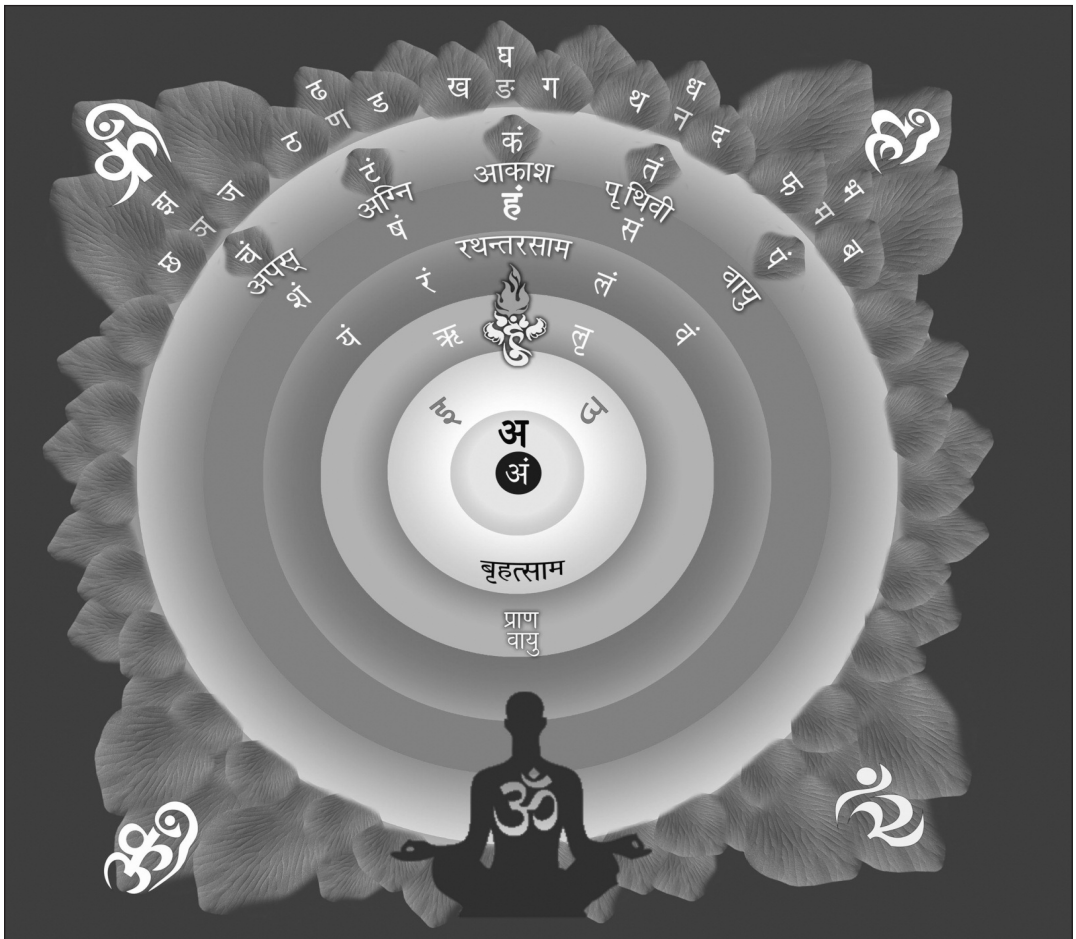

ब्रह्मकमल

वर्णमातृका के बीजाक्षरों से सृष्टि की उत्पत्ति

ऊपर दिए चित्र में वर्णाक्षरों से बीजाक्षर और बीजाक्षरों से सृष्टि की उत्पत्ति का चित्रण किया गया है। अक्षरों पर बिंदु का आरोह उनमें प्राण और चेतना का संचार करता है। तब वे अक्षर, सृष्टि के निर्माण के कारण और कारक तत्त्वरूप बीजाक्षर हो जाते हैं।

तंत्रशास्त्रों के अनुसार अकार से सारे स्वर और हकार से सारे व्यंजन उत्पन्न होते हैं। अकार और हकार, दोनों के संयोग के बाद उन पर बिंदु के आरोह से अहंकार बनता है जो सृष्टि का कारण है।

क कारक चेतना है और मल स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि का प्रतीक है। इन दोनों के मिलने से कमल शब्द बनता है।

अभिनवगुप्त के अनुसार अकार, इकार और उकार सृष्टि की तीन सर्जक शक्तियां हैं। ऊपर दिए चित्र में इसी का विवरण है।

- सुरेन्द्र भटनागर

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 7

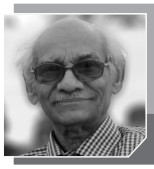

प्रो. सुरेंद्र भटनागर

आत्मचेतना और भारतीय सृष्टि विज्ञान

भारतीय मनीषियों व ऋषियों ने सृष्टि के सर्जन के विषय में गहन चिंतन-मनन किया है। सहस्रों वर्ष पूर्व केवल भारतीय दर्शन में ही ब्रह्माण्ड विद्या का प्राकट्य हुआ। ब्रह्माण्ड के अभितप्त अवस्था में फूलने से पार्थिव कणों का निर्माण होता है। वे नाभकीय कण बन, अन्य द्रव्य कणों को अस्तित्व में लाते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिक आज इस प्रक्रिया को 'नाभकीय संश्लेषण' कहते हैं। यह सुखद व आश्चर्यजनक तथ्य है कि सहस्रों वर्ष पहले भारत द्वारा प्रस्तुत किया गया सृष्टि-सर्जन विषयक दर्शन पाश्चात्य देश आज प्राप्त कर सके हैं। डॉ. सुरेन्द्र भटनागर इस विषय के प्रकांड पंडित हैं। वे अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय,भोपाल के तत्त्वावधान में सक्रिय 'भारत विद्या अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र' के निदेशक हैं। इससे पूर्व 'मंगल विमर्श' के अक्तूबर 2016 के अंक 8 में छपे उनके शोधपरक लेख 'भाषा में वर्ण शिक्षा दर्शन की उपेक्षा क्यों' भी अनेक विद्वानों व शोधार्थियों का ध्यान आकृष्ट कर चुका है। इस बार प्रस्तुत अपने आलेख में उन्होंने प्राचीन भारतीय ब्रह्मांड ज्ञान व आधुनिक अनुसंधान के बीच साम्य को रेखांकित किया है–

1. आत्मतत्त्व क्या?
2. अभितपन, स्फीति और द्रवण से द्रव्यों की उत्पत्ति।
3. अहं–सृष्टि का बीज प्रत्यय ।
4. अंतःस्थ बीज वर्णों से सृष्टि की योनि ।
5. सृष्टि, माया की स्वतंत्र इच्छाशक्ति की लीला ।
6. मायिक रचनाशक्ति से आत्मचेतना का संसार में बँधना ।

आत्म तत्त्व क्या?

अभी कुछ दशक पहले तक वैज्ञानिक, मन को मस्तिष्क का उत्पाद मानते थे और चेतना के विषय के अध्ययन को विज्ञान

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 8

का विषय मानने से इनकार करते थे। किंतु 'क्वांटम भौतिकी' के अभिज्ञान के साथ स्थिति पूरी तरह नहीं, तो बहुत कुछ बदल गई है। आज सिद्ध, प्रसिद्ध संज्ञावैज्ञानिक (न्यूरो-साइंटिस्ट्स) मन और चेतना का एक वैज्ञानिक विषय के रूप में अध्ययन कर रहे हैं। स्टीवन रोज (1998) का कथन है कि मन का मस्तिष्क से एक अटपटा रिश्ता है। डेविड चामर्स (1996) का कहना है कि मन और मस्तिष्क का एक होना स्वीकार नहीं किया जा सकता। हमें इस द्वैत की स्वतंत्रता को स्वीकार करना ही होगा। जॉन सर्ल (2000) इच्छाशक्ति की स्वतंत्रता को स्वीकार करते हैं और यह भी कि इच्छाशक्ति एक नियत समय भौतिक

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 9

अग्निसोमात्मकं जगत् स एषोऽग्नि प्रजापतिरूप:

क्रियाओं को प्रभावित कर सकती है और उनका नियंत्रण कर सकती है और यह भी कि सारा विश्व अन्ततः मन का ही खेल है। मन और उसके ईश्वर से संबंध के बारे में श्री मेहेरबाबा (2009) ने एक बेहद सरल सूत्र दिया है। वे कहते हैं – ''मन जब सामान्य गति से काम करता है तो यह मनुष्य की स्थिति है। यही मन जब अधिक तेज गति से काम करता है, तो यह उन्माद की स्थिति होती है, इसके विपरीत जब यह मन सुस्त हो जाता है तो चेतना की यह अवस्था 'मस्तों' या 'गॉड इंटोक्सीकेटेड' मनुष्यों में पाई जाती है। यह लोग सामान्य रूप से जगह-जगह पाए जाते हैं, ये बाहरी वातावरण में अपनी कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं करते । इन्हें देह और

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 10

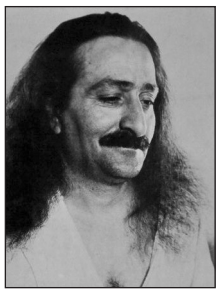

मन जब सामान्य गति से काम करता है तो यह मनुष्य की स्थिति है। यही मन जब अधिक तेज गति से काम करता है, तो यह उन्माद की स्थिति होती है, इसके विपरीत जब यह मन सुस्त हो जाता है तो चेतना की यह अवस्था 'मस्तों' में पाई जाती है। यह लोग सामान्य रूप से जगह-जगह पाए जाते हैं। इन्हें देह और दुनिया का सामान्य भान नहीं होता। जब मन मर जाता है या उसकी गति रुक जाती है तो यही मनुष्य के ईश्वर होने की स्थिति है। -श्री मेहेरबाबा

दुनिया का सामान्य भान नहीं होता। जब मन मर जाता है या उसकी गति रुक जाती है तो यही मनुष्य के ईश्वर होने की स्थिति है।'' वे कहते हैं कि मन का मरना ही ईश्वर होना है। इस इच्छाहीन स्थिति को योग में निर्विकल्प समाधि कहा गया है। तो सारी बात मन की स्थिति पर टिकी है। आत्मा सत्य का स्थिर रूप है और उसका गतिशील रूप संसार के रूप में, उसकी महिमा है। महिमा शब्द महः से उत्पन्न हुआ है, जो चेतना का तुरीय पद है। चेतना की मोक्षावस्था।

अभितपन और द्रवण से द्रव्य कणों की उत्पत्ति

अस्तित्व का कभी नाश नहीं होता। वह केवल रूपांतरित होता है। यही आज विज्ञान का भी मत है। भारतीयों ने इस ऋषि ज्ञान को बहुत पहले जान लिया था। वर्णों में अकार अस्तित्ववाचक वर्ण है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– ''मैं अक्षरों में अकार हूँ।'' यह अभावात्मक अस्तित्व जब भावरूप होकर सक्रिय होता है, तो गतिमान होकर सृष्टि का रूप हो जाता है। अकार से आकार हो जाता है। सकार से साकार हो जाता है। यही अकार अपनी ही शक्ति (मात्रा) से आत्मारूप हो जाता है। फिर आत्मा के द्रवण से आकाश, आकाश के अभितपन और द्रवण से वायु (वैज्ञानिक हाइड्रोजन को पहला वायु-कण मानते हैं) फिर इस हाइड्रोजन के अभितपन और द्रवण से अग्नि (वायोरग्नि)। फिर अग्नि प्रजापति, जिसे 'बृहदारण्यक उपनिषद्' अश्व कहता है, उसी के अभितपन से अंगिरस (फार्मियोनिक द्रव्य) और (अंगिरस) बोसोनिक द्रव्य जन्म लेते हैं। प्रो. लक्ष्मीश्वर झॉ (2007) सारे प्रकरण को सरल ढंग से समझाते हुए कहते हैं कि अग्नितत्त्व ही घन, तरल और विरल भेद से भौतिक जगत का निर्माण करता है, उनके अनुसार यही त्रयी विद्या है। यही ऋग्यजुसामात्मक वेद विद्या है। वे लिखते हैं कि साम ही तीनों अग्नियों को एकत्र रखने में समर्थ होता है। वही अथर्व है।

आत्मा की यह द्वैत रूप उपस्थिति ही यत् और जूः रूप है। इसमें यत् गतिरूप है, प्राणरूप है। अव्यक्त होने से यह प्राण ही असत् कहलाता है। इस अव्यक्त प्राण से ब्रह्मांड की रचना प्रक्रिया प्रारंभ होती है और मूर्त जगत् (जूः) जन्म लेता है। प्रो. लक्ष्मीश्वर झॉ (2007) लिखते हैं कि सभी प्रकार के प्राणों की समग्रता ही पुरुष है। वे यह भी लिखते हैं कि भौतिक पदार्थों में जो अग्नि का पार्थिव रूप है वह अंगिरा है और जो उसका प्रकाश रूप आभा मंड़ल है, वह अंगिरस है। मैंने अपनी पुस्तक नासदीय (2012) में अग्नि के इस पार्थिव रूप को वैज्ञानिकों द्वारा 'फर्मियोनिक मैटर' और आभात्मक रूप को बोसोनिक मैटर के रूप में पहचाना और वर्णित किया है। इस प्रकार बोसोनिक और फर्मियोनिक द्रव्य ही भौतिक जगत् के आदिद्रव्य हैं। यही वेदों द्वारा वर्णित (यत्, जूः) यजुष है। वायु है।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 11

अहं– सृष्टि का कारणबीज प्रत्यय

अकार और हकार के ऊपर बिंदु के आरोह से निर्मित अहंकार, चेतना का पहला आत्मबोध है। अहं पहला अस्तित्ववाचक पद है। ध्वनिरूप है। अस्ति, अस्मि, अस्तु –यह सभी अस्तित्ववाचक पद हैं, जो अकार से पदरूप हुए हैं। इसी द्रव्य से सारी सृष्टि का जन्म होता है। उपनिषद् कहते हैं – *'अग्नेरापो'*। अग्नि से 'अपस्'। वैज्ञानिक इस अपस् को ही जल कहते हैं। अपस् उपनिषदों के अनुसार गुणों की भेदहीन अवस्था है। जल उसका प्रतीक है। वैज्ञानिक दृष्टि से जल का निर्माण हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से होता है। ये दोनों ही अग्निवाचक वायुकण हैं। किंतु इन दोनों अग्निबीजों के मिलने से जल या पानी बनता है, जिसका अग्नि के विपरीत शीतल गुण होता है। उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रंथ कहते हैं, इसी अपस् से पृथिवी के सभी द्रव्य बनते हैं। *'अदभ्य पृथिवी'*। यही आदिवाराह का समुद्र में से निकालना है। सृष्टि का अगला चरण पृथिवी पर वनस्पतियों का उद्गम है। *'पृथिवी वनस्पतयः'*।

प्रतीक रूप में अश्वमेध यज्ञ में जब अश्व की बलि दी जाती थी तो वह भी मृत्यु के साथ फूलता था। ब्रह्मांड भी अपनी अभितप्त स्थिति से जब फूलने पर फैलता है तभी पार्थिव कणों का निर्माण होता है। वे नाभकीय कण बनते हैं, जो अन्य द्रव्य कणों के निर्माण का कारण बनते हैं। इस प्रक्रिया को आज ब्रह्मांड -वैज्ञानिक 'नाभिकीय संश्लेषण' (Nucleosynthesis) कहते हैं। इस प्रकार आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से अपस्, अपस् से पृथिवी, पृथिवी से वनस्पतियाँ और उनसे फिर मनुष्य व अन्य जीव। यही भारतीय ब्रह्मांड विज्ञान है।

वेद कहते हैं – संसार की गति व स्थिति, दोनों का नियंत्रक ताप है। ताप ही अग्नि प्रजापति है, जो सृष्टि का प्रथम देवता है। 'ऋग्वेद' का पहला मंत्र इसी देवता के स्मरण से प्रारंभ होता है। *'अग्निमीळे पुरोहितम्'*। यह अग्नि प्रजापति ही 'अश्व' है। अग्नि जब प्रसार करता है तो फूलता है, फैलता है। अग्नि के इस प्रसार से ताप का क्षय होता है और ताप के क्षय से अग्नि की ऊर्जास्थिर होकर कणों में बदल जाती है। यही अग्नि का मरना, उसका मृत होना और मूर्त होना है। मूर्तअग्नि ही पृथिवी है।

मैंने अपनी पुस्तक 'वर्णम् - संस्कृत भाषा का वर्ण विज्ञान-एक अध्ययन' (2014) में लिखा है कि अग्नि ही मृत या मूर्त होकर पृथिवी बन जाती है। यह तथ्य हमारे भाषाकारों को उस समय पता था, जब वे वर्णों के सांकेतिक अर्थ का निर्धारण कर रहे थे। ऊर्जा और द्रव्य एक ही तत्त्व की दो स्थितियाँ हैं, यह तथ्य आइंस्टीन ने विज्ञान में आज बताया है, पर इसका हमारे पूर्वजों को वेदों के प्राकट्य काल में ही पता था।

अंतःस्थ बीज वर्णों से सृष्टि की योनि

वर्णों में य, र, ल, व अंतःस्थ वर्ण कहलाते हैं। यह एक ही प्राण की चार अवस्थाओं के संकेत हैं। तंत्र में रं - अग्निबीज है, यह अग्नि ही मृत होकर लं - पृथिवीबीज बन जाती है। अग्नि मरने से पहले मूर्छित

संसार की गति व स्थिति, दोनों का नियंत्रक ताप है। ताप ही अग्नि प्रजापति है, जो सृष्टि का प्रथम देवता है। 'ऋग्वेद' का पहला मंत्र इसी देवता के स्मरण से प्रारंभ होता है। *'अग्निमीळे पुरोहितम्'*। यह अग्नि प्रजापति ही 'अश्व' है। अग्नि जब प्रसार करता है तो फूलता है, फैलता है। अग्नि के इस प्रसार से ताप का क्षय होता है और ताप के क्षय से अग्नि की ऊर्जास्थिर होकर कणों में बदल जाती है। यही अग्नि का मरना, उसका मृत होना और मूर्त होना है। मूर्तअग्नि ही पृथिवी है।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 12

होती है तो वायु बनती है और इसी वायु के स्थिरीकरण से पृथिवी (लं) बनती है। काठ में अग्नि होती है, पर यह अग्नि का मूर्छित रूप है। इसी मूर्छित अग्नि की अगली स्थिति मृदा है। मृदा, मृत होना है। यही आदित्य का मार्तण्ड होना, फिर मार्तण्ड सूर्य से मृत्युलोक के निर्माण का वैदिक वर्णन है। आगे चलकर इसी मृदा से जीवन जन्म लेता है। तंत्र में 'यं' प्राण या जीवन का बीज है।

आचार्य अभिनवगुप्त (900 ई.) अपने ग्रंथ 'तंत्रलोक' में 'इकार' का इच्छाशक्ति के रूप में वर्णन करते हैं और क्षुब्ध इच्छाशक्ति इकार से य, र, ल, व – इन चारों अंतःस्थ वर्णों की उत्पत्ति दिखाते हैं। इनमें

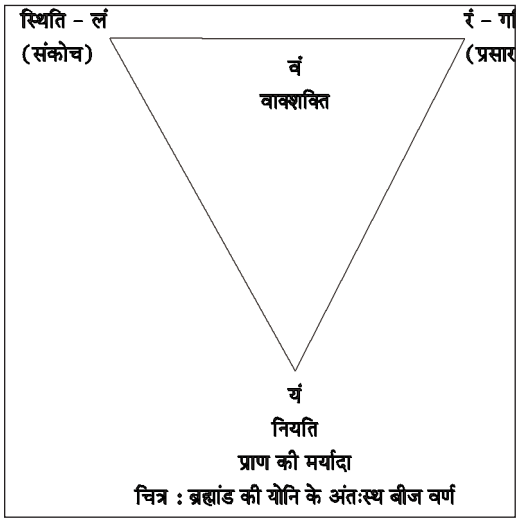

चित्र : ब्रह्मांड की योनि के अंतःस्थ बीज वर्ण

रं, लं और यं क्रमशः अग्नि, पृथिवी और प्राण के बीजाक्षर हैं। रं के रूप में अग्नि गति का, लं के रूप में पृथिवी की स्थिति का और यं के रूप में प्राण, नियति का बीज वर्ण है। भाषा में य, र, ल, व –इन चार वर्णों को हम केवल वर्णमाला में रटकर छोड़ देते हैं, उनका अर्थ नहीं जानते। इनका अर्थ केवल तंत्र में समझा जा सकता है। तंत्र में यं, रं, लं, वं - ये चारों बीजाक्षर, सृष्टि की अंतःस्थ योनि का निर्माण करते हैं। ये चारों अक्षर अंतःस्थ बीज हैं। बीज होने के कारण ही ये सृष्टि की बीजयोनि हैं।

ऋकार, लृकार और इकार – ये तीनों ही गति से संबंधित स्वर हैं। 'यं' बीज का अर्थ नियमन है। यमराज मृत्युलोक में जीवों की आयु को मर्यादित करता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से अस्तित्व की दो अवस्थाएँ हो सकती हैं, या तो वस्तु स्थिर रहेगी अथवा गतिमान होगी। स्थिति और गति – ये दोनों एक ही सत्ता की दो अवस्थाएँ हैं। ये परस्पर परिवर्तनीय दो स्थितियाँ हैं।

सृष्टि, माया की स्वतंत्र इच्छा शक्ति की लीला

इकार वर्ण ही मायाशक्ति है जिससे भेदमूलक संसार जन्म लेता है। माया अपना विस्तार, बिना किसी पूर्व नियम की बाधा के, स्वतंत्र रूप में करती है।

'सैव माया स्वतंत्रस्य भेददृष्टिप्रकाशिनी'।

मायिक रचना शक्ति से आत्मचेतना का संसार में बँधना

विज्ञान भी संसार की मूल रचनातत्त्व को किसी नियम से निर्धारित नहीं मानता। तदनुसार द्रव्य के जितने भी सूक्ष्म कण हैं –वे अपने व्यवहार में स्वतंत्र होते हैं। अगर इनके कोई नियम हैं भी तो वह संभावनाओं के हैं और इन्ही संभावनाओं से सृष्टि का जन्म होता है। इस सिद्धांत के ही आधार पर 'क्वांटम भौतिकी' के नए भौतिकशास्त्र की रचना हुई है। ये आधुनिक विज्ञान और प्राचीन भारतीय सृष्टिविज्ञान की विचार भूमि का अद्‌भुत साम्य है। यह सिद्ध करता है कि ईश्वर ने संसार की रचना किन्ही नियमों या विचारों से बँधकर नहीं की। इसके पौराणिक रूपक में विष्णु को, जो सृष्टि का आदिकारक है, सोता हुआ दिखाते हैं और ब्रह्मा, जो सृष्टि का कारक है, उसकी उत्पत्ति विष्णु की नाभि से दर्शाते हैं –नाभि एक विचारशून्य स्थान है। यदि ईश्वर

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 13

ने संसार को सोचकर बनाया होता तो फिर ब्रह्मा, जो सृष्टि का कारक तत्त्व है, उसकी उत्पत्ति को नाभि के स्थान पर विष्णु के शीर्ष से दिखाया जाना चाहिए था । किसी पूर्व विचार से सृष्टिक्रम का निर्धारण न होने से ही विविधात्मक संसार विकसित हुआ अन्यथा एकविध अनन्यतम् संसार बना होता, ईश्वर ने अपनी ज्ञान शक्ति द्वारा प्रारंभ में ही एक संपूर्ण विकसित सृष्टि बनाई होती। सुंदर, सर्वोत्तम और पूर्णतः निर्दोष तथा पापमुक्त। भारत में सृष्टि को हम इसलिए ईश्वर की लीला कहते हैं।

लीला *'अघटनघटनापटीयसी'*। जो ईश्वर की स्वतंत्र इच्छाशक्ति का परिणाम होती है। संसार, माया की स्वतंत्रशक्ति का स्वरूप प्रकाशन है । संसार बंधन है और बंधन का कारण अज्ञान ही हो सकता है । ईश्वर ने भी जब संसार को बनाया तो वह संसार में स्वयं बँधा । वेद कहते हैं *'त्रिबद्धा वृषभः रोरवीति'*। वह जीवात्मा अन्न, प्राण और मन के तीन बंधनों से बँधकर रोदन करता है। शिवसूत्र की व्याख्या में डॉ. श्यामाकांत द्विवेदी (2015) लिखते हैं कि संसार रूपी मल की उत्पत्ति का कारण अज्ञान ही है। *'अज्ञानं किल बन्धहेतुरुदितः शास्त्रे मलं तत्स्मृतम्'* । शैव त्रिक्दर्शन में आत्मा के अपने स्वरूप के आच्छादन से भवबंधन एक स्वातंत्र्य उल्लसित कल्पना है। संसार की सृष्टि के कारण, तंत्रशास्त्रों में स्वतंत्र इच्छा (इकार), मनोल्लास (ऊकार) और प्राणोन्मेष (उकार) – बीजवर्ण हैं। संक्षेप में, यही भारतीय ब्रह्मांड विज्ञान है।

लेखक अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल में 'भारत विद्या अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र ' के निदेशक हैं।

संदर्भ

1. *चामर्स डी.जे. (1996), दि कॉंशस माइंड 'इन सर्च ऑफ ए फंडामेंटल थ्योरी', ऑक्स.फोर्ड यूनीवर्सटी प्रेस, न्यूयार्क।*
2. *लक्ष्मीश्वर झॉ (2007) वेदों का मौलिक स्वरूप, अभिषेक प्रकाशन, दिल्ली।*
3. *मेहेरबाबा (2009) ईश्वरवाणी, अनुवाद केशवनारायण निगम, अवतार मेहेर बाबा पर्पीचुअल ट्रस्ट, अहमदनगर।*
4. *परमहंस मिश्र (1985) आचार्य अभिनवगुप्त 900 ई. तंत्रसार : टीका, शक्ति प्रकाशन, वाराणसी ।*
5. *स्टीवन रोज़ (1998), ब्रेंस, माइंड एंड दी वर्ल्ड, ऐसेस ऑन दी न्यू साइंसेस ऑफ माइंड, प्रिंसटन यूनीवर्सटी प्रेस, एन.जे.।*
6. *सुरेंद्र भटनागर (2012), नासदीय -- भारतीय और आधुनिक ब्रह्मांड विज्ञान- एक तुलनात्मक अध्ययन, भारतीय शिक्षण मंडल, नागपुर।*
7. *सुरेंद्र भटनागर (2014) वर्णम् , संस्कृत भाषा का वर्ण विज्ञान-एक अध्ययन, भारतविद्या अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र, अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी वि.वि. भोपाल।*
8. *श्यामाकांत द्विवेदी (2015), शिवसूत्र सिद्धांत और साधना, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।*

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 14

प्रकृति को ईश का आवास मानने के कारण भारत में प्रकृति संगी आर्थिक संस्कृति का विकास हुआ। आर्थिक संस्कृति की धारणा को शास्त्र ने मंत्र, मानस और मूर्ति में विधान किया। यही लक्ष्मी की उपास्य प्रतिमा लोक व्याप्त हुई। जिन मंत्रों से लक्ष्मी की प्रतिमा रची गई है, उनमें गहरा ज्ञान-विज्ञान निहित है। शास्त्रीय ज्ञान संपदा को जनमानस के लिए सहज सुलभ बनाने वाली ऐसी 'दृश्यभाषा' विश्व की किसी संस्कृति के पास नहीं है। लक्ष्मी के इसी स्वरूप से भारत की ऐसी आर्थिक संस्कृति का परिचय मिलता है, जिसके नेतृत्व में हजारों वर्ष तक विश्वजीवन सुरक्षित और संपन्न बना रहा।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 15

डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

भारतीय अर्थ-संस्कृति की प्रतिमा : लक्ष्मी

हम जानते हैं कि बाजार में बिकनेवाली अमुक आहार-विहार की वस्तु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, फिर भी हमारे जीवन में उन हानिकारक वस्तुओं का हस्तक्षेप बना रहता है; क्योंकि अर्थाश्रित शहरी जीवन पर बाजार की हुकूमत चलती है। उत्पादन और विज्ञापन से बाजार तय करता है कि लोग क्या खाएँ, क्या पहनें और कैसे रहें। इस आर्थिक तंत्र के साथ जब दुनिया के ताकतवर देशों की राजनीति जुड़ जाती है तब व्यावसायिक गतिविधियाँ स्पर्धा से आगे बढ़कर आर्थिक रणनीति और आर्थिक युद्ध का मोर्चा बन जाती हैं। हम जानते हैं कि चीन शत्रु है। उसकी धमकियों से आए दिन तनाव बना रहता है, फिर भी हमारा देश चीन से लगभग छह लाख करोड़ रुपये का समान खरीदता है और उसे साठ-सत्तर हजार करोड़ के राजस्व का लाभ देता है। चीन लागत से कम मूल्य पर बने सामान का निर्यात करता है, उस सस्ते सामान के सामने भारत के महँगे समान की बिक्री ठप हो जाती है। आज हमारे ही बाजारों में हमारा सामान नहीं बिकता, उद्योग-धंधे बंद हो रहे हैं, जिसके चलते अर्थाश्रित शहरी समाज और अन्नाश्रित ग्रामीण समाज दोनों में बेरोजगारी, भुखमरी, अपराध, कर्ज, आत्महत्या, भ्रष्टाचार और चारित्रिक पतन व्याप्त है। प्रश्न उठता है कि चीन हम से पैसे कमाता है और हमें ही मिटा देने के लिए प्रयास क्यों करता है? हम मरने-मिटने को विवश क्यों हैं? इसलिए कि वर्तमान आधुनिक अर्थव्यवस्था और उसे संचालित करनेवाली विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन इत्यादि संस्थाओं के अनुबंध में हमारा देश भी बँधा हुआ हैं। ये आर्थिक संस्थाएँ भौतिक विकास की दावेदारी करती तो है, लेकिन वे भलीभाँति जानती हैं कि उनके कार्यों के दुष्परिणाम से आज विश्व-जीवन विनाश के निकट पहुँच चुका है। उनका मानना है कि विश्व-जीवन के विनाश की पूरी संभावना है, लेकिन लौटकर पीछे आना बिल्कुल संभव नहीं।

इसी संसार में हम भारतीय लोग भी

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 16

रहते हैं, हमारी सोच अलग है, हम मानते हैं कि प्रकृति परिणामिनी और शाश्वत है। वह मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्मों का फल अवश्य देती है, कर्म-फल का नाश नहीं होता, उसे भोगना ही पड़ता है। हम मानते हैं कि पदार्थ का नाश नहीं, रूपांतरण होता है, चौरासी लाख योनियों में जीव अपने कर्म के अनुसार अनेक रूपों में जन्म लेता रहता है और प्रलय के बाद भी विश्व का अंत नहीं होता। हम कर्म फल का सिद्धांत मानते हैं, ईश्वर की शाश्वत सत्ता में विश्वास रखते है, सनातन धर्म और शाश्वत संस्कृति का अनुपालन करते हैं। इसी धर्म-संस्कृति ने हमें सिखलाया है कि जो धन दूसरों के उत्पीड़न से, धर्म का उल्लंघन करके अथवा शत्रु को

सनातन धर्म-संस्कृति ने हमें सिखलाया है कि जो धन दूसरों के उत्पीड़न से, धर्म का उल्लंघन करके अथवा शत्रु को सिर झुकाकर, अपमानित होकर प्राप्त होता हो, उस पाप के धन को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

सिर झुकाकर, अपमानित होकर प्राप्त होता हो, उस पाप के धन को ग्रहण नहीं करना चाहिए–

अतिक्लेशने य चार्था धर्मस्यातिक्रमेण तु।
शत्रुणा प्रणिपातेन ते ह्यर्था मा भवन्तु मे ।।

(11.16 चाणक्य नीति दर्पण)

किसी देश को लूट कर नहीं, धर्माचरण से भारतीयों ने धनार्जन का पराक्रम किया ।

हजारों वर्ष पुराने भारत के व्यापारिक इतिहास के गौरवमयी पृष्ठ साक्ष्य हैं कि सबसे पहले भारत ने ही समुद्री व्यापार आरंभ किया था। भारत के व्यापारिक पथों का जाल पूरे विश्व में फैला हुआ था। विख्यात पुरातत्त्वविद् डॉ.मोतीचंद्र की पुस्तक 'सार्थवाह' की भूमिका में वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है- 'व्यापारिक जगत में जो सोने की खेती हुई, उसके फूले पुष्प चुननेवाले व्यक्ति सार्थवाह थे। बुद्धि के धनी, सत्य में निष्ठावान, साहस के भंडार, व्यावहारिक सूझ-बूझ में पके हुए, उदार, दानी, धर्म और संस्कृति में रुचि रखने वाले, नई स्थिति का स्वागत करनेवाले, देश-विदेश की जानकारी के कोश, यवन, शक , पह्लव, रोमक , ऋषिक , हूण पक्वण आदि विदेशियों के साथ कंधा रगड़नेवाले, उनकी भाषा और रीति-नीति के पारखी भारतीय सार्थवाह महोदधि के तट पर स्थित ताम्रलिप्ति से सीरिया की अन्ताखी नगरी (Antiochos) तक, यवद्वीप और कटाह द्वीप (जावा और केदा)से चोल मंडल के सामुद्रिक पत्तनों और पश्चिम में यवन बर्बर देशों तक के विशाल जल-थल पर छा गए थे।' वासुदेवशरण अग्रवाल ने वेद, महाभारत, पाणिनि, बौद्ध जातक और संस्कृत साहित्य-इत्यादि प्राचीन स्रोतों से भारत के व्यावसायिक मार्गों का विवरण दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि समतल, वन, पर्वत, रेगिस्तान और जल मार्गों से भारतीय यातायात विश्व भर को जोड़ता था, कहना उचित होगा कि भारतीय व्यापार के वैश्विक विस्तार से प्रथम भू-मंडलीकरण हुआ था, जिसकी आचार संहिता से वर्तमान भू-मंडलीकरण बहुत कुछ सीख सकता है।

'ऐतरेय ब्राह्मण' (7.15) में कहा गया है कि जो मनुष्य अथक परिश्रम नहीं करता, आलस्य रूपी पाप से ग्रस्त रहता है, उसे लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती। ईश्वर भी उद्यमी का ही मित्र बनता है, इसलिए चलते रहो, चलते रहो–

नाना श्रांताय श्रीरस्ति पापो नृषद्वरो जनः।
इन्द्र इच्चरतः सखा चरैवेति चरैवेति।।

वेद के इस आदेश का पालन भारतीय अर्थोपासकों ने किया। ऐसे ही व्यापारी सार्थों के विषय में वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है - भारतीय सार्थ घर

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 17

में बैठे हुए लोगों के बाहर निकलकर वात-तपिक जीवन बिताने के लिए प्रबल आह्वान देता था। सार्थ की यात्रा व्यक्ति के लिए भार या बोझिल नहीं होती थी। उसके पीछे आनंद, उमंग, मेल-जोल, अन्यान्य हित बुद्धि की सरस भावनाएँ छाई रहती थी। सार्थ के इस आनंद प्रधान जीवन की कुंजी महाभारत के उस वाक्य में मिलती है, जिसे यक्ष प्रश्न के उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा– सार्थः प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः (297.45 पर्व)। चरैवेति के आह्वान पर अर्थार्जन के लिए सतत् गतिमान एक यात्रारत समाज था, सैंकड़ों नावें एक साथ चलतीं थी, इनमें सार्थवाह (कप्तान) की नाव विशेष रहती थी। सभी नावों पर ध्वज लगे होते थे। इनके विषय में कहा गया है कि सार्थवाह के नेतृत्व में चलता हुआ समूह जनार्णव की तरह प्रतीत होता था, मानो, मनुष्यों का समुद्र लहरा रहा हो। उस काफिले को सांगयांत्रिक कहा जाता था, उसमें प्रमुखतः व्यापारी होते थे, परंतु उनके साथ अन्य नावों पर वेद पारंगत ब्राह्मण, खगोलविद्, रक्षक, चिकित्सक, कला कर्मी भी रहते थे। सांगयात्रिकों में बड़े-बूढ़े, जवान-बच्चे, स्त्रियाँ भी होतीं थीं। इनका पराक्रम उत्साह, इंद्रिय संयम, धैर्य, वीरता, और नियमबद्ध संगठन बहुत सशक्त थे। इतिहास गवाह है कि इन्होंने अनेक भू-भागों का भ्रमण करते हुए विश्व जीवन को अपनी सांस्कृतिक समृद्धि का परिचय दिया। इन्होंने विश्व भर में रामायण, महाभारत, पौराणिक आख्यान, वैदिक साहित्य और अन्य कथाओं के साथ-साथ संगीत, नृत्य, गणित, ज्योतिष, शिल्प-स्थापत्य, चिकित्सा, संस्कृत काव्य-नाटक का विस्तार किया।

इसी आर्थिक-सांस्कृतिक अभियान ने समुद्र को रत्नाकर कहा और लक्ष्मी को क्षीर सागर की कन्या, इनके पति श्रीहरि विष्णु शेषशैया पर क्षीर सागर में शयन करते हैं। क्षीर सागर और शेष शैया इत्यादि बिम्बों से उस आपो ज्योतिः को इंगित किया गया है जो जागतिक ऐश्वर्य का मूल स्रोत है। लक्ष्मी शब्द का अर्थ है– जो शक्ति स्वयं उद्यमी को लक्ष्य बनाती है– 'लक्ष्यति उद्योगिनम्' (लक्षि+मुट् + ई = लक्ष्मी)। लक्ष्मी किसी अकर्मण्य को लक्ष्य नहीं बनाती। इस शब्दार्थ से ही ज्ञात हो जाता है कि लक्ष्मी सार्थक और सोद्देश्य प्रयत्न की शक्ति है। लक्ष्मी लक्ष्य का द्योतक शब्द है। लक्ष्य से लख, लाख, लक्खी और अँग्रेजी के लक , लकी शब्द भी व्युत्पन्न होते हैं। इस सांस्कृतिक संकल्पना में समुद्र से मानुषी जीवन का अभिन्न संबंध संमूर्त हुआ है। संपत्ति के लिए अछोर समुद्र में जीवन को अर्पित करके सार्थों ने आस्था का आलंब ग्रहण किया और उससे आर्थिक क्षेत्र में अनुष्ठानिक आचार सृजित हुआ। श्रावण पूर्णिमा के दिन समुद्र को नारियल अर्पित करने का अनुष्ठान आज भी होता है, क्योंकि इस दिन से सूर्य से पृथ्वी की दूरी बढ़ने लगती है, समुद्र की लहरें यात्रा के योग्य संयमित होने लगती हैं। महाभारत काल में समुद्री यात्रा को निर्विघ्न बनाने के लिए यक्षराज मणिभद्र की पूजा होती थी– तथा नो यक्षराड् मणिभद्रः प्रसीदतु. (61.123 वनपर्व)। कावेरी के मुहाने पर पुहार नामक तटीय नगर में स्थित सार्थवाहों के देवता मणिभद्र के भव्य मंदिर का उल्लेख मिलता है। दक्षिण भारत में समुद्री यात्रा की अधिष्ठत्री मणिमेखला देवी की पूजा

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 18

कन्याकुमारी से कटाह द्वीप तक प्रचलित थी।

आधुनिक विज्ञान के समर्थक यह नहीं समझ पाते कि भारतीय जनमानस में आधिदैविक शक्तियों और उनकी मूर्तियों के प्रति आस्था क्यों है? इसका स्पष्ट आधार यह है कि भारत में प्राचीन काल से पंचतत्त्व का विज्ञान स्थापित है। यह विज्ञान प्रत्येक अस्तित्व के तीन स्तर मानता है- स्थूल, सूक्ष्म और कारण। जो अस्तित्व स्थूल रूप में दृष्टिगोचर होता है, उसके सूक्ष्म और कारण स्तर नहीं दिखने पर भी सक्रिय होते हैं। अदृश्य होने पर भी मनुष्य की धर्मनिष्ठा उसके आत्मबल को पोषित करती है। धर्मनिष्ठा को आधिदैविक सत्ता से पोषण मिलता है। इसीलिए

जिससे मान और दृष्टि दोनों बनी रहें, वही रोटी और उतनी ही रोटी इष्ट है। भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय धर्म से ही होता है, धर्म ही राम और रोटी के बीच की जीवमान कड़ी है। जो रोटी राम से विमुख करे, उसमें कोई राम नहीं और राम की उपासना रोटी के बिना हो ही नहीं सकती।

भारतीय अर्थ संस्कृति में अनुष्ठानिक धारणा का पक्ष महत्त्वपूर्ण है जो बहुधा आस्था के रूप में व्यक्त होता है। इसके साथ विकसित हुई संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि भूख लगना प्रकृति है, छीन झपटकर खाना विकृति है और मिल बाँटकर खाना संस्कृति है। 'मिल-बाँटकर खाना'-- कोई सामान्य कथन नहीं है, यह वेद का आदेश है-- 'केवलाघो भवति केवलादी' अर्थात जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है। इस कथन को छांदोग्य उपनिषद् की श्रुति स्पष्ट करती है. दशकृतं सैषा विराडन्नादी (4.3.8)। अन्न और अन्नाद अर्थात भोज्य और भोक्ता रूप में एक ही विराट ब्रह्म सर्वव्याप्त है। वैदिक विश्वदृष्टि जगत को ब्रह्ममय देखती-दिखाती है। इसीलिए ऋषियों ने कहा है कि अन्न पर सब का अधिकार है। 'ईशावास्य उपनिषद्' में कहा गया है कि धन किसी का नहीं, इस पर गिद्ध की तरह लालचाई नजर मत रखो, अपितु धन का भोग त्याग की भावना से ग्रहण करो-- 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' --इसी आर्थिक संस्कृति का ध्येय वाक्य है-- 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' ऋषियों ने ग्रहण और त्याग के मध्य भोग को स्थापित किया। इस आचार से ही धन के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने धर्म संगत अर्थ की भारतीय धारणा को पुनर्स्थापित करते हुए लिखा है-- 'वे भौतिक साधन जिनसे शरीर की धारणा न होकर क्षय होता है, रोटी न होकर विष कहे जाएँगे। खाद्या व खाद्य अर्थानर्थ का विचार इसी आधार पर करना होगा। शरीर साध्य नहीं, साधन है-- 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।' अतः जिस रोटी से शरीर की साधनता में कमी आ जाए, वह भी रोटी नहीं कही जाएगी। रोटी का अभाव और रोटी का प्रभाव दोनों ही साधना में बाधक हैं। इसीलिए रहीम जी ने दुविधा भरी वाणी में कहा--

रहीमन पेट सों कहत क्यों न भयौ तू पीठ।
रीति मान बिगारहि, भरे बिगारहि दीठ।।

जिससे मान और दृष्टि दोनों बनी रहें, वही रोटी और उतनी ही रोटी इष्ट है। भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय धर्म से ही होता है, धर्म ही राम और रोटी के बीच की जीवमान कड़ी है। जो रोटी राम से विमुख करे, उसमें कोई राम नहीं और राम की उपासना रोटी के बिना हो ही नहीं सकती-- 'भूखे भजन न हो ही गोपाला, ले लेउ अपनी कंठी माला।' रोटी अवश्य चाहिए, पर जैसे कच्ची रोटी पेट में दर्द करती है, वैसे ही पाप की रोटी मन को बिगाड़ती है। रोटी वही, जो ठीक सिंकी हो, पुण्यमयी हो। अन्यथा आटे

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 19

के टुकड़े को रोटी कहना ठीक नहीं होगा।

भारतीय संस्कृति ने रोटी को यज्ञशेष के रूप में स्वीकार किया है। यज्ञशेष का भोक्ता ही अमृत को प्राप्त होता है। बिना यज्ञ के यज्ञशेष नहीं मिल सकता, सृष्टि चक्र के चलने में सहायक होना ही यज्ञ है। त्याग से यज्ञ और यज्ञ से भोग– यही जीवन का क्रम है। बीज, वपन और भोजन यही रोटी के रूप में है। इन तीनों को धर्मानुसार और ब्रह्मकर्म समझकर करना ही भगवान की पूजा है। अतः रोटी की अवहेलना भगवान की अवहेलना तथा विधान का उल्लंघन है। रोटी में आसक्ति साधन में आसक्ति है, उसका विधिपूर्वक विनियोग ही श्रेय और प्रेय के लिए अभीष्ट है। (दी.सं.वा. खं.14, पृ.8-10)।' आशय यह कि राम का अर्थ तंत्र स्थापित हो जाए तो किसी भी रावण की स्वर्ण लंका फूँकी जा सकती है। राम की रोटी-धर्म का अर्थ पकाने के लिए यज्ञमय कार्य करना होगा। यह आज के समय की बड़ी चुनौती है।

आधुनिक युग की समृद्धि से आत्मिक सुख की आशा नहीं की जा सकती। आत्मिक सुख की आशा क्या, जब विकास और विनाश दोनों आमने-सामने खड़े हैं, प्राकृतिक आपदाओं से विश्वजीवन के भविष्य पर अंधकार छा रहा है।

रामायण को वेद का उपबृंहण कहा गया है। रामायण के माध्यम से वेदार्थ को लोक मानस तक पहुँचाया गया है। यथा, वेद कहता है कि मनुष्य की वाणी-वचन में लक्ष्मी निवास करती है– 'लक्ष्मीर्निहिता वाचि।' इसलिए सँभल कर बोलना, असत्य नहीं, सत्य और प्रिय बोलना। श्रीराम के व्यक्तित्व में वेद वचन का आचरण निहित है। उनके व्यक्तित्व में लक्ष्मी द्वारा वांछित सभी शुभ लक्षण हैं-- पीनवक्ष विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभ लक्षणः (11. बाल.1. वा.रा.)। लक्ष्मी किन शुभ लक्षणों की अपेक्षा करती है? धर्मज्ञ, सत्यभाषी, अक्रोधी, दृढ़प्रतिज्ञ, अनिन्दक, उपकारी इत्यादि। श्रीराम में ये सभी लक्ष्मी वांक्षित शुभ लक्षण हैं जिसके कारण सीता ने उन्हें वरण किया। माता-सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं। जब उन्हें रावण ने पहली बार देखा, उसके उसके मुँह से लक्ष्मी का मंत्रवत संबोधन निकला– 'ह्रीः श्रीः कीर्तिः लक्ष्मीः .....'(17. अरण्य. 46. वा.रा.)। बाद में उसकी दृष्टि क्रमशः गिरती चली गई और उसने सीता का हरण कर सर्वनाश मोल ले लिया।

बर्बरतापूर्वक हरण की हुई लक्ष्मी सर्वनाश का कारण बन जाती है, यह बात प्राचीन काल में ही नहीं, आधुनिक काल में भी सत्य है। आज से चार-पाँच सौ वर्ष पहले समुद्री दस्युओं ने दुनिया की प्राचीन सभ्यताओं की धन-संपदा लूटने का अपकृत्य आरंभ किया। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जब भारत की लक्ष्मी का हरण हुआ पश्चिमी दुनिया का चेहरा रोशन हो गया और आधुनिक युग का उदय हुआ। लेकिन, इस समृद्धि की बुनियाद जघन्य पापों पर खड़ी हुई। ये पाप केवल मनुष्य और प्राणियों तक सीमित नहीं हैं, इन से प्रकृति भी आहत है। भारतीय कर्म-फल के सिद्धांत के अनुसार आधुनिक युग की समृद्धि से आत्मिक सुख की आशा नहीं की जा सकती। आत्मिक सुख की आशा क्या, जब विकास और विनाश दोनों आमने-सामने खड़े हैं, प्राकृतिक आपदाओं से विश्वजीवन के भविष्य पर अंधकार छा रहा है। इस सच को स्वीकार करने के बावजूद लोग कह रहे हैं कि पीछे लौटना संभव नहीं है। आधुनिक सभ्यता की दशा रावण की तरह ही है। रावण जानता था कि सीता के हरण से उसका सर्वनाश होगा। फिर भी उसे सर्वनाश के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग दिख ही नहीं रहा था।

आधुनिक युग की आत्मघाती अर्थव्यवस्था के जन्म की पहली कहानी पश्चिमी एशिया का व्यापारिक रास्ता

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 20

बंद हो जाने के बाद शुरू होती है। जब 15वीं शताब्दी में तुर्की और यूरोप में लंबा युद्ध छिड़ा हुआ था और भारत के उत्पादों की आपूर्ति ठप पड़ गई, तब पश्चिम के दो दरिद्र समुद्र मार्ग से विश्व के सबसे समृद्ध देश भारत की खोज में निकल पड़े। एक खोजी था स्पेन का कोलंबस और दूसरा था पुर्तगाल का वास्को डि गामा। कोलंबस रास्ता भटक कर अमेरिकी देशों में पहुँचा। वह इंका और मय नामक समृद्ध संस्कृतियों पर विपत्ति बनकर टूट पड़ा। उसने इंका के राजा अतहुल्प को भोजन पर निमंत्रित करके धोखे से मार डाला। वास्को डि गामा भी मार्ग भटक गया, लेकिन उसके

मार्ग भटके वास्को डि गामा को भारतीय नाविक मिले, जिनकी सहायता से वह 1498 ई. में कालीकट पहुँचा। वहाँ के राजा जमोरिन ने उसे राजकीय सम्मान दिया, उसने सम्मान का बदला हमलों से लिया, जीत नहीं सका तो वह केरल से भागकर गोवा पहुँचा, गोवा में पैर जमाने के बाद उसने खूनी खेल शुरू कर दिया।

भाग्य ने साथ दिया, उसे भारतीय नाविक मिल गए, जिनकी सहायता से वह 1498 ई. में कालीकट, केरल पहुँचा। कालीकट के राजा जमोरिन ने वास्को को राजकीय सम्मान दिया, उसने सम्मान का बदला हमलों से लिया, जीत नहीं सका तो वह केरल से भागकर गोवा पहुँचा, गोवा में पैर जमाने के बाद उसने खूनी खेल शुरू कर दिया।

ठीक इसी समय आधुनिक युग की आत्मघाती अर्थव्यवस्था के जन्म की दूसरी कहानी इंग्लैंड की दरिद्रता से शुरू होती है। मैरी युग के इंग्लैंड– 1554 ई. में दरिद्रता और आपसी कटुता छाई हुई थी। कैथोलिक ईसाइयों की बर्बरता से प्रोटेस्टेंट ईसाइयों का अस्तित्व संकट में था। प्रोटेस्टेंट ईसाइयों को मार-काटकर कैथोलिक ईसाई मजबूर कर रहे थे कि वे इंग्लैंड छोड़ कर दूसरे देशों में भाग जाएँ। मैरी की मौत के बाद एलिजाबेथ पदासीन हुई। वह कैथोलिक नहीं थी। उसे उत्तराधिकार में दरिद्रता और अराजकता हाथ आई थी। उन दिनों यूरोप के देशों में लूट, डकैती और व्यापार में अंतर नहीं माना जाता था। समुद्री मार्ग में अँग्रेज दस्यु सक्रिय थे। वे डच, पुतर्गीज, स्पेनिश, फ्रेंच नाविकों से भयंकर मार-काट करते थे। इन्हीं जल दस्युओं को एलिजाबेथ ने इंग्लैंड की दरिद्रता दूर करने के लिए संगठित किया, लिखित अनुमति देकर दस्युओं को इस शर्त पर वैध बनाया कि दस्यु खुद जोखिम उठाएँगे, खर्च करेंगे, लड़ेंगे, लूटेंगे और लूट की संपत्ति में हिस्सा देंगे।

इंग्लैंड के दस्यु भारत पहुँच कर दौलत लूटने का सपना तो देखते थे, लेकिन उन्हें मार्ग ज्ञात नहीं था। तब वे छोटे-छोटे जहाज लेकर लिस्बन, बोर्डो और एंटवर्प के क्षेत्रों में चक्कर लगाते थे। एक बार एलिजाबेथ के प्रिय समुद्री दस्यु फ्रांसिस ड्रेक ने लिस्बन जानेवाले पुर्तगाली जहाज पर हमला किया, उस जहाज से भारत जाने का नक्शा हाथ लगा। यही नक्शा इंग्लैंड की दरिद्रता को भारत पहुँचाने में सहायक हुआ और अँग्रेजों की किस्मत का दरवाजा खुलने लगा। फ्रांसिस ड्रेक की लूट के कारनामों से खुश होकर एलिजाबेथ ने उसे 1581 में 'नाइटहुड' की उपाधि से महिमा मंडित किया। इस तरह एलिजाबेथ ने नीग्रो गुलामों की तिजारत से अच्छी आमदनी करने वाले तस्कर जॉन हॉकिंस को 'सर' की उपाधि से नवाजा था। एक जलदस्यु वाल्टर रेले के नाम का उल्लेख भी मिलता है जिसे 'सर' की उपाधि से विभूषित किया गया था। यह ठीक है कि एलिजाबेथ के लिए जो सहयोगी हुआ, उसे इन आला उपाधियों से महिमा मंडित किया गया, चाहे वे दूसरों के लिए शैतान ही क्यों न हों, लेकिन यदि इन्हीं उपाधियों

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 21

को पाकर आधुनिक भारत के सुशिक्षित लोग प्रसन्न हो रहे हों तो यह चिंता का विषय अवश्य है। जब भारत जैसे संपन्न देश में लूट के लिए पहुँचने का रास्ता मिल गया, उस रास्ते की प्राप्ति विपन्न अँग्रेजों के लिए 'नई दुनिया की खोज' और उसकी खुशी का कारण हो सकती है क्योंकि इससे उनकी किस्मत का दरवाजा खुला, लेकिन इस खोज का महत्त्व भारतवासियों के लिए क्या है कि आधुनिक शिक्षा के शिकार लोग लोट-पोट होने लगे? यही वह मानसिक पराधीनता है जिसे दूर करने के लिए वास्तविक इतिहास जानना जरूरी हो जाता है।

पूँजीवाद के जन्म में प्रोटेस्टेंट ईसाई मानसिकता को ही उत्तरदायी माना जाता है। आधुनिक विश्व पर जिस आर्थिक व्यवस्था और मानसिकता का सर्वाधिक प्रभाव है, वह प्रभाव विगत चार सौ वर्षों से आर्थिक क्षेत्र में प्रोटेस्टेंट ईसाइत की मानसिकता से निर्मित हुई है।

प्रश्न करना होगा कि कौन-सी नई दुनिया खोजी गई, जब दुनिया के लोग एक दूसरे को जानते थे? हजारों वर्ष से भारतवासी दुनिया के देशों में आते-जाते थे। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का अभियान हजारों वर्ष पुराना है। आज हमें यह जानना जरूरी है कि विश्व की पुरानी संस्कृतियों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भारत के व्यापारी चीन, जापान, इंडोनेशिया, यमन, मिस्र, अरब, अफ्रीका और अमेरिका के देशों में जाते थे। उस समय यूरोपीय देशों का कोई नामलेवा नहीं था, वे इस स्थिति में थे ही नहीं कि व्यापारिक क्षेत्र में उसकी गिनती होती। ज्ञात इतिहास में इंग्लैंड की एलिजाबेथ पहली महिला है, जिसकी लूटेरी टुकड़ी ने अनैतिकता की हदें पार कर धन जमा किया और धन कमाने के लिए छल-कपट, लूट-मार को वैध बनाया। एलिजाबेथ का आदर्श आज कठघरे में खड़ा है।

पूँजीवाद के जन्म में प्रोटेस्टेंट ईसाई मानसिकता को ही उत्तरदायी माना जाता है। जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर (1864-1920) को रिलिजन की आचार पद्धति, उसके प्रभाव से पैदा हुई सामाजिक संरचना और उसके सामाजिक क्रिया-कलापों के संबंध की व्याख्या के लिए जाना जाता है। मैक्स वेबर ने पूँजीवाद और प्रोटेस्टेंट रिलिज़न के आपसी संबंध की व्याख्या की है। उसका मानना है कि प्रोटेस्टेंट ईसाइयों ने लौकिक उपलब्धियों को अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने पैसे को सर्वोच्च लक्ष्य माना और कर्म को ही पूजा कहा। यही कारण है कि औद्योगिक व्यवस्था और पूँजीवाद का विकास विशेष कर इंग्लैंड और संयुक्त अमेरिका जैसे प्रोटेस्टेंट ईसाई देशों से हुआ। स्पष्ट है कि आधुनिक विश्व पर जिस आर्थिक व्यवस्था और मानसिकता का सर्वाधिक प्रभाव है, वह प्रभाव विगत चार सौ वर्षों से आर्थिक क्षेत्र में प्रोटेस्टेंट ईसाइत की मानसिकता से निर्मित हुई है।

एलिजाबेथ ने 17वीं शताब्दी के आरंभ में अकबर को पत्र लिखा। उसका दूत उनतीस घड़ों का नजराना लेकर आगरा आया। उन्हीं दिनों अकबर की मौत हो गई। दुबारा 1608 में जहाँगीर के पास विलियम हॉकिंस आया। जहाँगीर ने अँग्रेजों को तिजारत करने की इजाजत दे दी। इतिहासकार लिखते हैं कि इसी के साथ भारत के इतिहास में पहली बार एक ऐसी मक्कार बर्बर जाति भारतीय संस्कृति के संपर्क में आई, जिसके अनैतिक आचरणों को सभ्यता कहा ही नहीं जा सकता था। भारत की आंतरिक स्थिति अँग्रेजों के अनुकूल थी। भारत के राजा और नवाब आपस में

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 22

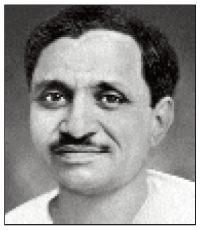

'भारत की वर्तमान परिस्थिति में जब उसे राजनीतिक स्वाधीनता मिल गई है, आर्थिक स्वतंत्रता दिलाने का सवाल खड़ा होता है। यह आज का मुख्य राष्ट्रीय प्रश्न है।' 'हम जानते हैं कि भारतीय ढ़ंग सदा से धर्म का (मजहब या रिलिज़न का नहीं) ढ़ंग रहा है। धर्म के इस ढंग पर ही आर्थिक नवनिर्माण के नए नक्शे को तैयार करने की जरूरत है।

लड़-भिड़ रहे थे। धीरे-धीरे भारत की आंतरिक कलह का लाभ अँग्रेजों को मिलता चला गया। 1757 की प्लासी की लड़ाई के बाद बंगाल की लूट शुरू हुई, भारत कंगाल होने लगा और इंग्लैंड मालामाल। इंग्लैंड में 1760 ई. में पहली औद्योगिक क्रांति हुई। 9 मार्च 1776 को एडम स्मिथ की पुस्तक 'द वेल्थ ऑफ नेशन' प्रकाशित हुई, माँग और आपूर्ति के सिद्धांत पर इकोनॉमिक्स का वैचारिक युग आगे बढ़ने लगा और इसी शोषक अर्थतंत्र की प्रतिक्रिया में मार्क्सवाद के प्रतिपक्षी विचार का उदय हुआ, जिसकी राजनीतिक विफलता से संसार परिचित है, पर, मार्क्सवाद के विघटन से उत्पन्न नव मार्क्सवाद का सूक्ष्म विमर्श आगे बढ़ रहा है। इसी तरह एडम स्मिथ के माँग और आपूर्ति का सिद्धांत भी आज के उत्पादन और विज्ञापन के सूक्ष्म बारीक कार्यों में व्यवस्त है। माँग नहीं हो, तब भी माँग पैदा की जाती है। गैरजरूरी या हानिकारक वस्तुओं के उत्पादनों की खपत के लिए भी विज्ञापन ब्लास्ट किया जाता है। हिंसक व्यवसाय के हमलों को आज संकट की तरह देखा जा रहा है और व्यावसायिक आचार पर सवाल उठ रहे हैं। व्यावसायिक दुनिया दो खेमों में बँट चुकी है– ट्रस्ट लेस बिजनेस और बिजनेस विद ट्रस्ट। कहा जा रहा है कि 'महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि आपने कितना कमाया, महत्त्वपूर्ण यह है कि किस तरह कमाया?' यह आर्थिक संस्कृति का प्रश्न है। इसी सवाल ने भारतीय अर्थ संस्कृति को प्रासंगिक बना दिया है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने आज से तिरसठ वर्ष पहले आर्थिक स्वाधीनता के संदर्भ में धर्म सम्मत भारतीय आर्थिक संस्कृति को स्थापित करते हुए लिखा था– 'भारत की वर्तमान परिस्थिति में जब उसे राजनीतिक स्वाधीनता मिल गई है, आर्थिक स्वतंत्रता दिलाने का सवाल खड़ा होता है। यह आज का मुख्य राष्ट्रीय प्रश्न है।' 'हम जानते हैं कि भारतीय ढंग सदा से धर्म का (मजहब या रिलिज़न का नहीं) ढंग रहा है। धर्म के इस ढंग पर ही आर्थिक नवनिर्माण के नए नक्शे को तैयार करने की जरूरत है' (दी. सं. वा. खं- 3, पृ.59)। दीनदयाल जी ने आर्थिक संस्कृति के मनोगत पक्ष का ध्यान दिलाया। 'आर्थिक पहलू पर विचार करते हुए लोग मानसिक प्रवृत्ति पर विचार नहीं करते, जबकि हमारे आर्थिक प्रयत्नों पर मानसिक प्रवृत्तियों का विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। मानसिक प्रवृत्तियाँ सांस्कृतिक जीवन से प्रभावित होती हैं। अतः हमारे आर्थिक प्रयत्नों पर संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव रहता है। हमारी संस्कृति में भी हमारे आर्थिक प्रयास किस आधार पर चलें, इस बात की स्पष्ट व्यवस्था है। भौतिक विकास के लिए उसमें समुचित स्थान है' (दी.सं.वा. खं-4, पृ. 241)। 1957 ई. के भारत में जब दीनदयाल जी धर्माधिष्ठित भारतीय आर्थिक-संस्कृति पर विचार कर रहे थे, उनके समकालीन आधुनिक आर्थिक विचारक धर्म की गहरी मीमांसा पर आधारित दीनदयाल जी के विचारों पर ध्यान नहीं दे रहे थे और आज के उत्तराधुनिक विचारों के प्रभाव में सोचनेवाले लोग भी इस विचार को परिवर्तनकारी

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 23

नहीं मानते, अन्यथा यह विचार सिद्धांत बन चुका होता। बहुधा धर्म का विषय आते ही हम भावना और आस्था की दृष्टि से सोचने-समझने लगते हैं। हमारे संस्कारों में धर्म का बोध सहजता से व्याप्त है और यही अतिनिकटता अपरिचय का कारण बन गई है।

आइए, एक उत्तराधुनिक समाजशास्त्री मिशेल फूको और अन्य पश्चिमी विद्वानों के विचार पर चर्चा करने से पहले दैहिक और मानसिक श्रम अर्थात प्रयत्न को याद करते हुए वेद वचन– 'श्रमेण तपसा सृष्ठा' के साथ पुनः दीनदयालजी के कथन को दुहरा लेते है– 'हमारे आर्थिक प्रयत्नों पर मानसिक प्रवृत्तियों का विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है, मानसिक प्रवृत्तियाँ

स्वयं मनुष्य का शरीर ही शक्ति का घर है। ज्ञान और शक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। ज्ञान है तो शक्ति होगी, शक्ति होगी तो ज्ञान होगा। - मिशेल फूको

सांस्कृतिक जीवन से प्रभावित होती हैं।' संस्कार पर जोर देने वाले इस कथन के समानांतर फेड्रिक नित्शे के नैतिक शक्ति और प्रभुता संबंधी विचारों से प्रभावित विचारक फूको के इस कथन को देखिए– 'स्वयं मनुष्य का शरीर ही शक्ति का घर है। ज्ञान और शक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। ज्ञान है तो शक्ति होगी, शक्ति होगी तो ज्ञान होगा।' फूको ने ज्ञान, शक्ति और व्यक्ति के त्रिकोण को अपने विचार के केंद्र में रखा। मार्क्स के स्थूल पूँजी के आधार को नकारने के बाद पश्चिमी विचारक धार्मिक-सांस्कृतिक संरचना पर विशेष ध्यान देने लगे। इससे उनके विचार भारत के पारंपरिक विचारों के निकट दिखने लगे। जैसे पियरे बोरदियू के विचार। बोरदियू के विचार को मार्क्स और वेबर के विचारों का मिश्रण कहा जाता है। बोरदियू ने वर्ग को परिभाषित करने के लिए पूँजी को चार भागों में बाँटा– आर्थिक पूँजी, सामाजिक पूँजी, सांस्कृतिक पूँजी और प्रतीकात्मक पूँजी। आर्थिक शक्ति की मनोगत संस्था को समझने के लिए बोरदियू के पूँजी क्रम को उलटकर प्रतीकात्मक पूँजी से आर्थिक पूँजी की ओर विचार किया जाए, तो हमें अपने धार्मिक-सांस्कृतिक प्रतीकों के आर्थिक शक्ति का तंत्र आसानी से समझ में आ सकता है। प्रतीक की आस्था से सांस्कृतिक ताना-बाना बनता है, सांस्कृतिक ताने-बाने से सामाजिक संपर्क होता है और सामाजिक संपर्क आर्थिक पूँजी में रूपांतरित हो जाता है अथवा वह संपर्क राजनीतिक पद और अर्थ में आकार ले लेता है। इस प्रकार मनुष्य की नैतिक शक्ति विविध प्रभुताओं का सृजन करती है। मनुष्य के शरीर को शक्ति का घर मानना श्रम की दृष्टि से सर्वथा उचित है। इस संदर्भ में लेवी स्ट्रास के संस्कृतिवादी विमर्श का सहयोग लिया जा सकता है। स्ट्रास ने पूँजी आधारित मार्क्स के वर्ग भेद को नकारते हुए कहा–'वर्ग संघर्ष सफल नहीं हो सकता क्योंकि लोगों की भाषा में प्रयुक्त शब्दावली की संरचना नहीं बदलती।' स्ट्रास का मानना है–'भाषा वस्तु का परिणाम नहीं होती, अपितु वस्तु के घटित होने का कारण स्वयं भाषा और उसकी अवधारणा है। यही कारण है कि हम भाषा के माध्यम से वस्तुओं और अपने आपको समझते हैं। स्ट्रास के कथन का अभिप्राय है कि भाषा से ही सांसारिक संबंधों का ताना बाना रचा-बना है। भाषा से ही समाज संरचना रचना बनती है। इसी तथ्य को भारतीय विचार परंपरा में स्पष्ट देखा जा सकता है।

भारतीय अर्थ संस्कृति यह मानती है कि वाणी में ही अर्थ की मूल सत्ता है। अर्थ मन से वचन में, वचन से कर्म में, उद्यम में व्यक्त होता है। कठोर वचन से अर्थ का नाश होता है। महाभारत का कथन है– जो मनुष्य कठोर और तीखे वचन बोलता है, वह वचन रूपी काँटों से दूसरे व्यक्ति को छेद देता है। ऐसे व्यक्ति को देखने

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 24

'मुसलमान बादशाहों ने धार्मिक' (मजहबी) बातों को ही प्रधानता दी, जो समय लड़ने-भिड़ने से बचा उसे उन्होंने सुख भोगने में खर्च कर दिया। कभी उन्होंने इस बात पर विचार नहीं किया कि हमारे देश की संपत्ति का क्या हाल है, वह घट रही है या बढ़ रही है? यदि घट रही है तो किस तरह बढ़ाना चाहिए?
- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

मात्र से लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। ऐसे मनुष्य के मुँह में पाप रहता है–

अरुन्तुदं पुरुषं तीक्ष्णवाचं
वाक्कष्टकै वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मी कतमं जनानां
मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वहन्तम्।। *(आ. 89.9.)।*

यह अर्थतंत्र वागर्थ के संपृक्त स्वरूप की स्थापना पर आधारित है। यह तथ्य ज्ञान और भाषा के अंतर्भूत संबंध को प्रकट करता है, आर्थिक शक्ति की मनोगत संस्था के विषय में बतलाता है। अर्थ के चिंतन और सृजन की क्रिया मानसिक है। चिंतन की प्रक्रिया मनोगत शब्दों में घटित होती है। हमारी ऋषि परंपरा ने यह आदेश दिया है कि दीनता परवशता से मुक्त रहकर कम से कम सौ शरद जिओ– 'अदीनाः स्याम शरदः, शतम्'। अर्थ के सृजनार्थ चिंतन के लिए कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यह नियम बनाया गया है कि राजा ब्रह्म मुहूर्त में जाग कर अर्थ का चिंतन करे– 'षष्ठे तुर्यघोषेण प्रतिबुद्धिः शास्त्रमिति कर्तव्यतां च चिन्तयेत् (1.14.18)। इन्हीं नियमों से अर्थ-सृजन के कारण राज्य को अर्थ का मूल कहा गया– 'अर्थस्य मूलं राज्यम्।' इन्हीं विधियों से भारत का परम वैभव प्रकट हुआ। मुगल काल को स्वर्ण युग बतानेवाले पक्षपाती इतिहासकारों को भारत की आर्थिक संस्कृति से क्या लेना देना। मुगलों को जमी-जमाई अर्थ व्यवस्था हाथ लग गई थी, अर्थ चिंतन की जरूरत क्या थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– 'मुसलमान बादशाहों ने धार्मिक' (मजहबी) बातों को ही प्रधानता दी, जो समय लड़ने-भिड़ने से बचा उसे उन्होंने सुख भोगने में खर्च कर दिया। कभी उन्होंने इस बात पर विचार नहीं किया कि हमारे देश की संपत्ति का क्या हाल है, वह घट रही है या बढ़ रही है? यदि घट रही है तो किस तरह बढ़ाना चाहिए? (संपत्ति शास्त्र, पृ.27)।

प्रकृति को ईश का आवास मानने के कारण भारत में प्रकृति संगी आर्थिक संस्कृति का विकास हुआ। आर्थिक संस्कृति की धारणा को शास्त्र ने मंत्र, मानस और मूर्ति में विधान किया। यही लक्ष्मी की उपास्य प्रतिमा लोक व्याप्त हुई। जिन मंत्रों से लक्ष्मी की प्रतिमा रची गई है, उनमें गहरा ज्ञान-विज्ञान निहित है। शास्त्रीय ज्ञान संपदा को जनमानस के लिए सहज सुलभ बनाने वाली ऐसी 'दृश्यभाषा' विश्व की किसी संस्कृति के पास नहीं है। मिथ पर आधारित ग्रीक कला हो या जातक कथाओं के भीति चित्र, इनकी सराहना भव्यता के लिए की जा सकती है, परंतु ये पौराणिक देवी-देवताओं की मूर्ति और चित्र की तरह मंत्र तथा मुद्रा से निसृत नहीं हैं, जिनका ध्यान किया जा सके। जबकि देवी-देवताओं की मूर्ति और चित्र अनुष्ठानिक हैं। यह दृश्यभाषा हमारे सामाजिक जीवन में इतने रची-बसी है कि इन्हें बना-बेचकर सर्व सामान्य व्यक्ति अर्थोपार्जन कर लेता है। इतनी सशक्त दृश्यभाषा के लिए आधुनिक शिक्षा में कोई स्थान नहीं है, उलटे इन्हें अंधविश्वास बताकर मजाक उड़ाया जाता है। यह प्रवृत्ति आधुनिक युग के एकाधिकार और दंभ का हिस्सा है। हिंदुओं की आस्था के प्रतीकों

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 25

के भद्दे उपयोग के कई मामले सामने आते रहते हैं। विदेशी व्यवसायी हिंदू देवी-देवताओं के चित्र को कभी जूतों पर, कभी टॉयलेट सीट पर और कभी स्विम वियर पर बना देते हैं। एक मामला 2011 में सामने आया, फैशन वीक में ऑस्ट्रेलिया की एक डिजाइनर लीसा ब्लू ने बिकनी की प्रिंटिंग में लक्ष्मी के चित्र का दुरुपयोग किया। आधुनिकासुर की अँधेर नगरी के लोगों को यह बात ज्ञात नहीं है कि लक्ष्मी के इसी चित्र से भारत की ऐसी आर्थिक संस्कृति का परिचय मिलता है, जिसके नेतृत्व में हजारों वर्ष तक विश्वजीवन सुरक्षित और संपन्न बना रहा। यदि फिर से भारत की आर्थिक संस्कृति विश्व व्यवस्था का नेतृत्व करती है तो आज भी विश्वजीवन को 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का प्रसाद मिल सकता है और आधुनिक युग के सर्वनाशक विकास से विश्व की रक्षा हो सकती है।

लक्ष्मी के स्वरूप को उनके चित्र में देखें– वह कमल पर विराजमान हैं। कमल कीचड़ से उत्पन्न होता है, कमल को पंकज भी कहा जाता है। पंक या कीचड़ निर्धनता का द्योतक है। कीचड़ में जड़ें जमाकर कमल नाल अँधेरे को चीरते हुए ऊपर उठता है और जल के तल पर, सूर्य के प्रकाश में खिला हुआ है। कमल का जन्म जल में होता है। जल संसार है। जैसे जल में मछली रहती है, मनुष्य प्राण के सागर में रहता है– भवसागर में अर्थात सांसारिकता में। कमल का यह संदेश है कि जैसे वह जल में रहते हुए भी जल के ऊपर है, मनुष्य भी संसार में रहते हुए संसार से निर्लिप्त रहे। यह निर्लिप्त जीवन कैसे संभव है? इसका सूत्र है- 'मा गृद्धः क्वश्चिद् धनम्' लालच न करो, धन किसका हुआ अर्थात संसार से धन लेकर कोई नहीं जा सका, यहीं का यहीं रह गया। यह वैराग्य वचन निर्लिप्त रहने के लिए है, न कि निर्धन रहने के लिए है। वेद हमें संसार में संलिप्त और निर्लिप्त दोनों तरह से रहने का आदेश देता है– 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा।' यही बात कहता है कमल। लेकिन, कैसे कोई संसार में संलिप्त रहे और निर्लिप्त भी? 'ईशावास्योपनिषद्' में इस प्रश्न का उत्तर है, उसमें जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया है, परंतु हमें यह बात कमल से सुननी-जाननी है– लक्ष्मी के कमलासन में द्विअंक पद्धति में दलों की संख्या है- -चार, आठ, सोलह आदि। वस्तुतः त्याग और संग्रह के उभय त्रिकोणों के मध्य सृजित वर्गीय संरचना से कमल के दल बनते हैं। यह मूलतः धर्म, अर्थ और काम के त्रिवर्ग का मंगलायतन है। यह वेदीय संरचना है। इस संरचना को दैशिक शास्त्र के अर्थायाम में देखा जा सकता है जिसकी व्याख्या दीनदयालजी ने की है। सोलह दलों के कमलासन पर माता लक्ष्मी बैठी हुई हैं। इनका वस्त्र लाल है, इनकी काया स्वर्णाभ है। इनके स्वरूप के प्रत्येक अवयवों के गहरे अभिप्राय हैं। जल प्राण है– आपोमयः प्राणः (5.6.6, छान्दो.)। प्राण हमारे शरीर की जैविक क्रियाओं की शक्ति है। प्राण से इन्द्रियाँ संचालित होती हैं। योगी जानते हैं कि स्वर, प्राण, समय और ऋतु एक दूसरे से सन्नद्ध हैं। शरीर में समय का चक्र सक्रिय रहता है, जिसके अनुसार इच्छा सक्रिय होती है, जागरण, निद्रा, भूख आदि का बोध होता है।

मनुष्य के शरीर में स्थित चैतसिक दिक्काल के इस चक्र को प्रसन्नोन्मुख, भाव समृद्ध, ज्ञान संपन्न बनाने के लिए हम माता लक्ष्मी की स्तुति करते हैं

सरसिजनिलये सरोजहस्ते
धवलतमांशुकगंधमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम्।।

(15, कनक धारा)

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 26

''हे भगवान श्रीहरि की प्रिये! कमल कुंज निवासिनि !! आपके चरणों में नीलांबुज हैं, आप धवल वसना हैं, सुगंधित माला से सुशोभित हैं। आपका सौंदर्य अद्वितीय है। हे त्रिलोक के संपूर्ण वैभव को प्रदान करनेवाली त्रिभुवनेश्वरि !!! आप कृपाकर मुझ पर प्रसन्न हो जाइए।''

यह स्वरूप विधान और उसकी प्रार्थना भाषिक मूर्ति है। यह ध्वनि वर्णों से निर्मित हुई है। यह मात्रा निबद्ध माता है, छंदाकृति है। इस दिव्य मनोबिम्ब से हमारे हृदय में दिव्य भाव भर जाता है, जिस भाव से प्राण, मन, वाणी, कर्म को आपूरित होता है। ऐसे समृद्ध मानस के विचार और उद्यम हमारे मनोरथों को साकार करते हैं। कुछ इस तरह की बात भाषा और धारणा को लेकर लेवी स्ट्रास भी करता है। वह मानता है कि भाषा भौतिक वस्तुओं का परिणाम नहीं होती, हम भाषा के माध्यम से वस्तुओं और स्वयं का ज्ञान प्राप्त करते हैं। भारतीय भाषा दर्शन कहता है– ज्ञान स्वाधीन नहीं है, शब्दों में अनुविद्ध है। शब्द से जगत भासित होता है। इसलिए स्तुति से लक्ष्मी की शब्द मूर्ति सृजित की जाती है।

लक्ष्मी की ध्यान मुद्रा के अनुसार भारत की पारंपरिक राजमुद्रा का निर्माण हुआ था। पुराने समय में चार पैसे का आना और सोलह आने का एक रुपया प्रचलित था। इस मुद्रा प्रारूप में अंकीय कमल की रचना हुई थी। राजमुद्रा की ऐसी संरचना अन्य देशों में भी प्रचलित थी। चीन के एक जीन में सोलह लियांग और ब्रिटेन के एक पौंड में भी सोलह औंस की अंकीय संरचना थी। इसी अंकीय संरचना का मूर्त रूप कमलासन पर विराजमान दशेन्द्रिक लक्ष्मी है। लक्ष्मी की संकल्पना 'चत्वारि वाग् परिमिता पदानि' और 'दशं दशनि विराट' अर्थात दशेन्द्रिक कायिक संरचना पर आधारित है, क्योंकि वाग में लक्ष्मी निहित है। लक्ष्मी को श्री विराट कहा गया और विराट दशसंख्यक है। भारत की यह ज्ञान परंपरा अन्य देशों में कैसे गई, जिसके आधार पर वहाँ की राजमुद्राओं के निर्माण में भी सोलह और एक के प्रयोग हुआ? यह खोज का विषय है। सोलह दल के कमलासन पर दशेद्रिक लक्ष्मी के समान ही पैसों के बाद रुपया का क्रम रखा गयी था– एक, दस, सौ, हजार, लाख आदि। दशेन्द्रिय में ज्ञान और कर्म की पाँच-पाँच इन्द्रियों के दो वर्ग हैं। इनमें ज्ञान की पाँच इन्द्रियाँ प्रधान हैं। इसके अनुसार एक पर पाँच शून्य होने से एक लाख बनता है। लाख अर्थात् लक्ष्य, लक्ष्यति उद्योगिनम् – उद्योगियों को लक्ष्य बनाने वाली श्रीसंपदा का नाम लक्ष्मी है। एक व्यक्ति को अदीन रहते हुए सौ शरद जीने के लिए कम से कम एक लक्ष्य स्वर्ण मुद्राएँ आवश्यक मानी गई।

आज भारत की मुद्रा व्यवस्था में षोडशी वेदी का क्रम नहीं है, दशसंख्यक पद्धति ही शेष है। राजकाज में रहनेवाले लोग भूल गए हैं कि 'दशं दशनि विराट' का दशसंख्यक स्वरूप आवाहन क्रम है और 'श्रीविराट' का षोडशी स्वरूप वेदी स्थापन क्रम है, लेकिन इस

कुमारगुप्त प्रथम (413-455 ई.) स्वर्ण मुद्रा पर अंकित अर्थ संस्कृति की प्रतीक देवी लक्ष्मी

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 27

तथ्य को लक्ष्मी की अनुष्ठानिक व्यवस्था नहीं भूल सकती। अनुष्ठानिक व्यवस्था जानती है कि नारायण के बिना लक्ष्मी नहीं रहती। नारायण के बिना अलक्ष्य-अलक्ष्मी रहेगी, अर्थ नहीं, अनर्थ रहेगा। ऐसी संपत्ति जिससे विपत्ति उत्पन्न हो, ऐसा विकास जिससे विनाश होता हो– लक्ष्मी नहीं, अलक्ष्मी कही जाती है। भारतीय आर्थिक संस्कृति में अर्थ और अनर्थ का विवेक है। इसमें अन्न और अन्नाद का एकत्व है। विराट स्वरूप विश्व जीवन श्रीविराट विश्वसंपदा का एकत्व है। हम जानते हैं कि आधुनिक अर्थ की धारणा में विराट और श्रीविराट की स्थापना नहीं है,

अत्यंत वैज्ञानिक तथ्यों का मूर्तिकरण लक्ष्मी के स्वरूप में किया गया है और जनमानस तक पहुँचा दिया गया है। संपदा को धारण करने की पात्रता ही कमलासन है।

आधुनिक आर्थिक युग की बुनियाद में समुद्री दस्यु की कंपनी है। उन्हें सोने की लंका चाहिए थी, अयोध्या तो नहीं चाहिए थी, जहाँ युद्ध नहीं होता, सर्वत्र समृद्धि और शांति रहती है। अधर्मपूर्वक धन लूटने की स्पर्धा से विश्व का शक्ति संतुलन बिगड़ जाए तो इसमें आश्चर्य क्या।

यदि भारत को परम वैभव से मंडित करना है और डिजिटल भारत बनाना है तो अंक विद्या आनी चाहिए। इस कार्य में वैदिक अंक भाषा सबसे अधिक सहायक होगी। इसी अंक भाषा के रेखाकार से लक्ष्मी चित्र बना, मूर्ति बनी। इसी से भारतीय राजमुद्रा की अंकीय संरचना बनी। इस अंकीय संरचना में अर्थ का दर्शन है। हमें जानना आवश्यक है कि महामनीषी पाणिनि ने अपने व्याकरण अष्टाध्यायी में किस प्रकार की संरचना का उपयोग किया है कि उन्हें आज कंप्यूटर का फर्सट प्रोग्रामर कहा जा रहा है? द्विसंख्या पद्धति (बाइनरी सिस्टम) और मस्तिष्क की संरचना का आपसी संबंध क्या है? जिसके आधार पर ब्रेनप्युटर की परिकल्पना की जा रही है? यह कितना आश्चर्यजनक लगता है कि अत्यंत वैज्ञानिक तथ्यों का मूर्तीकरण लक्ष्मी के स्वरूप में किया गया है और सामान्य जनमानस तक पहुँचा दिया गया है। संपदा को धारण करने की पात्रता ही कमलासन है। मनुष्य मानस को अम्लान कमल के सदृश्य होना चाहिए, तभी वह सृजनशील हो सकता है।

संवत्सर चक्र की सबसे घनी अमावस्या की मध्य रात्रि में दीवाली की पूजा होती है। इसके पंद्रहवें दिन कार्तिक की पूर्णिमा का चंद्रमा सोलह कलाओं सहित उदित होता है। बंगाल में आश्विन अमावस्या के पंद्रहवें दिन शरद पूर्णिमा को महालक्ष्मी की पूजा होती है। मन ही तो चन्द्रमा है – चंद्रमा मनसो जातः। यही प्रफुल्लमन महालक्ष्मी के लिए सोलह दल का कमलासन है, दिक्काल की वेदी है जिसे कालद्रष्टा ऋषियों ने प्रकृति में देखा और सर्वसंपन्नता प्रदान करनेवाली आर्थिक संस्कृति को संस्थापित किया। आज हमें आधुनिकासुर की अँधेर नगरी के अनर्थतंत्र की दरिद्रता से जूझना पड़ रहा है इसलिए हमें भी भारतीय आर्थिक संस्कृति और इसकी प्रतिमा लक्ष्मी की सबोध स्थापना करनी होगी। परमवैभव की प्राप्ति के लिए कल्याणमयी लक्ष्मी ही उपास्य होगी।

लेखक एनसीईआरटी नई दिल्ली के भाषा शिक्षा विभाग में प्राध्यापक हैं।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 28

भारत की विशाल अर्थव्यवस्था की विभिन्न समस्याओं का समाधान कर उसे शीघ्रता से प्रगति पथ पर अग्रसर करने की दृष्टि से आज सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका लघु उद्योग क्षेत्र की है। रोजगार वृद्धि, आय व धन के वितरण में समुचित समानता बनाए रखने, भारत की विशाल श्रमशक्ति, स्थानीय संसाधनों व कौशल का सर्वोत्तम उपयोग करने, औद्योगिक विकेंद्रीकरण तथा निर्यात बाजार के लिए विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करने आदि अनेक दृष्टियों से भारतीय अर्थव्यवस्था में लघुउद्योगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका व स्थान है।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 29

डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

लघु क्षेत्र केंद्रित विकास दर्शन एवं अर्थतंत्र

वर्तमान पश्चिमी विकास दर्शन एवं विकास-पथ समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने की बजाय इन समस्याओं को और अधिक उलझा रहा है और नित नई समस्याएँ खड़ी कर रहा है। अतः सबसे पहले इस आत्मघाती विकास के दुष्चक्र से बाहर आने का साहस करना होगा और इसके साथ ही भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप एक नया विकास-दर्शन अपनाना होगा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना से नेहरू- महालनोबिस मॉडल के नाम पर हमने भारी एवं आधारभूत उद्योग अर्थात् बड़े उद्योग केंद्रित विकास पथ को स्वीकार किया और उसके अनुसार भारत के अर्थतंत्र को गढ़ने का काम किया। सरकार ने उत्पादन-तंत्र एवं निवेश कार्यक्रमों में इन बड़े उद्योग को ही प्राथमिकता दी और इसमें से अधिकांश उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित करने के प्रयास प्रारंभ हो गए। सरकार की सब्सिडी, वित्तीय एवं बैंकिग नीति, मूल्य व विपणन नीति, कच्चे माल की आपूर्ति, बिजली एवं अन्य आधारिक सुविधाएँ, आयात-निर्यात नीति आदि सभी से संबंधित निर्णय बड़े उद्योगों के हित साधने के लिए ही किए जाने लगे। इसी प्रकार कृषि क्षेत्र में भी बड़े फार्मों एवं बड़े किसानों को ही तरजीह दिया जाने लगा। इस क्रम में छोटे व सीमांत किसान तथा कुटीर व लघु उद्यम लगातार उपेक्षित होते गए। परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े उद्यम लालफीताशाही, अकार्यकुशलता

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 30

यदि भारत में गरीबी, विषमता एवं बेरोजगारी जैसी समस्याओं से छुटकारा पाना है तो इसके लिए हमें स्वदेशी, स्वावलंबी विकेंद्रित अर्थतंत्र की रचना करनी होगी। अधिक ऊर्जा की खपत पर आश्रित एवं स्वचालित बड़ी-बड़ी मशीनों वाले कारखाने भारत के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते। हमें अपने देश की आवश्यकता एवं संसाधनों को ध्यान में रखकर ग्रामीण क्षेत्र एवं नगरीय क्षेत्र के लिए अलग-अलग प्रकार की समयानुकूल व्यावहारिक योजनाएँ बनानी होगी।

एवं साधनों के अपव्यय के शिकार हो गए और समूची अर्थव्यवस्था में विषमता एवं बेरोजगारी का संकट गहराता गया। अतः आज आवश्यकता है कि हम लघु क्षेत्र-केंद्रित विकास दर्शन एवं अर्थतंत्र के निर्माण की दिशा में गंभीरता से सोचें। यहाँ मैंने लघु क्षेत्र में कृषि के लघु क्षेत्र (सीमांत एवं छोटे भू-जोत वाले किसान) और उद्योग-जगत के लघु क्षेत्र (अर्थात् सूक्ष्म,लघु एवं मध्यम उद्यम) दोनों को शामिल किया है। किंतु विवेचन-विश्लेषण में उद्योग-जगत के लघु क्षेत्र पर ही ज्यादा जोर दिया गया है।

यदि भारत में गरीबी, विषमता एवं बेरोजगारी जैसी समस्याओं से छुटकारा पाना है, तो इसके लिए हमें स्वदेशी, स्वावलंबी विकेंद्रित अर्थतंत्र की रचना करनी होगी। अधिक ऊर्जा की खपत पर आश्रित एवं स्वचालित बड़ी-बड़ी मशीनों वाले कारखाने भारत के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते। हमें अपने देश की आवश्यकता एवं संसाधनों को ध्यान में रखकर ग्रामीण क्षेत्र एवं नगरीय क्षेत्र के लिए अलग-अलग प्रकार की समयानुकूल व्यावहारिक योजनाएँ बनानी होगी। ग्रामीण क्षेत्र में दस-पंद्रह गाँवों को मिलाकर ग्राम-संकुल आधारित कार्य योजना पर काम करना होगा। इस दृष्टि से गाँव के समग्र विकास पर ध्यान देना होगा। इसके लिए गाँवों में संस्कारयुक्त समाजोपयोगी शिक्षा, सब प्रकार के भेदभावों को दूर कर समरसता, सामाजिक स्वास्थ्य, ग्राम सुरक्षा तथा समृद्धि-स्वावलंबन जैसे सभी पहलुओं पर एक साथ ध्यान देना होगा।

ग्राम संकुल (10-15 गाँवों का समूह) और परिवार व्यवस्था को आधार बनाकर स्वदेशी व सहभागिता पर आधारित स्वावलंबी विकेंद्रित अर्थतंत्र निर्माण करने की दिशा में प्रयास हो। इस दृष्टि से जल संग्रह व प्रबंधन, भूमि संरक्षण, वन प्रबंधन व संवर्धन, देसी बीजों एवं पशुओं की देसी नस्लों का संरक्षण, जैविक खेती, गौ संरक्षण व संवर्धन, पंचगव्य के उपयोग, वैकल्पिक उर्जा, भारत की स्वास्थ्य परंपरा व चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद, योग, जैवविविधता, हर्बल संपदा आदि के समुचित उपयोग की योजना बने। विशेष कर भारत में जमीन, जल, जंगल, जानवर और जैवविविधता पर ध्यान दे सकने वाली व्यवस्था, रचना एवं नीति बने। साथ ही बायो-गैस, बायो-ऊर्जा, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा जैसे कार्यों को तेजी से आगे बढ़ाने के ठोस उपाय करने होंगे।

भारत की जलवायु, मिट्टी, कृषि जोत का आकार, उपलब्ध पशुधन, स्थानीय संसाधनों, कौशल व आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर बीज, खाद, कृषि-उपकरण, सिंचाई के साधन, विपणन, वित्तीय एवं शोध संस्थानों के तंत्र का निर्माण करना होगा। इस दृष्टि से दीनदयाल जी की परिकल्पना की अदेवमात्रिका कृषि (अर्थात् लघु एवं समुचित सिंचाई व्यवस्था वाली कृषि व्यवस्था) व्यवस्था के बारे में गंभीर व सार्थक प्रयास करने होंगे।

देश में प्रदूषणमुक्त उपयुक्त तकनोलॉजी पर आधारित उत्पादन-कुशल कुटीर व लघु उद्योगों की

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 31

शृंखला को बल प्रदान करना होगा। छोटे-छोटे शिल्पकारों एवं अन्य कौशल के जानकार व्यक्तियों की क्षमता-प्रतिभा का पूर्ण उपयोग करते हुए देश के दस्तकारी उद्योगों का नए सिरे से पुनर्गठन किया जाना चाहिए। लघु उद्यमियों, शिल्पकारों, ग्राहक-संस्थाओं के बीच आपसी समन्वय के नए प्रकारों व व्यवस्थाओं को विकसित करना होगा, ताकि उत्पादन व वितरण की फिज़ूलखर्ची एवं केंद्रीकरण व विषमता की प्रवृत्ति को रोका जा सके और सबके लिए सस्ती व अच्छी वस्तुएँ प्रदान की जा सके । इसके साथ समुदाय-आधारित उत्पादन व बिक्री तंत्र के निर्माण को भी प्रोत्साहित करना होगा। भारी व बड़े उद्योगों के स्थान पर लघु, कुटीर, कृषि-आधारित ग्रामोद्योग को प्राथमिकता दी जाए और इनके निवेश, ऋण, संरचनात्मक सुविधाओं, तकनोलॉजी, प्रशिक्षण, विपणन एवं वित्तीय व्यवस्थाओं का उपयुक्त तंत्र बने और तदनुरूप नीति निर्धारण हो। दीनदयाल जी की 'अपरमात्रिक उद्योग नीति' की संकल्पना को स्वीकार कर देश की उद्योग नीति बने। यह स्वावलंबन से कुछ अधिक उत्पादन वाली नीति होगी। यह सबको काम, विकेंद्रीकरण, पारंपरिक कारीगरों व शिल्पकारों की पोषक, कृषि व ग्राम व्यवस्था की पूरक, गाँवों से प्रतिभा पलायन रोकने वाली, मानवमूल्यों के अनुरूप, यंत्र-प्रधान न होकर श्रम-प्रधान वाली उद्योग नीति होगी।

घुमावदार अपव्ययी उत्पादन प्रक्रिया के स्थान पर विकेंद्रित मितव्ययी उत्पादन प्रक्रिया की दिशा में सक्रिय पहल की जानी चाहिए। विकास-केंद्रित रोजगार के स्थान पर रोजगार-केंद्रित विकास की रणनीति बनानी होगी-इसके आधार पर ही हम अपनी समस्त उत्पादन व निवेश की योजनाएँ व कार्यक्रम बनाए। आर्थिक नीतियों के मूल्यांकन एवं संसाधनों के आबंटन की दृष्टि से प्राथमिकता के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं– कृषि (विशेषकर सीमांत व छोटे किसान), लघु उद्यम (विशेषकर अति लघु एवं ग्रामोद्योग), स्वनियोजित असंगठित क्षेत्र, खुदरा व्यापार व व्यापारी, मजदूर, हस्तशिल्प व शिल्पकार, आम ग्राहक आदि।

प्रकृति के प्रति मातृत्व एवं देवभावयुक्त दृष्टि रखकर मानव हितैषी, पर्यावरण पोषक, रोजगार सृजनकारी भारतीय परिस्थितियों के लिए उपयुक्त तकनोलॉजी बनानी व अपनानी होगी। यह एक ऐसी

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 32

हमारी एकात्म दृष्टि कृषि और उद्योग के बारे में 'यह' अथवा 'वह' की नीति को ठीक नहीं मानती। यह तो अर्थव्यवस्था के कृषि, सेवा एवं औद्योगिक क्षेत्रों के बीच पूरकता एवं पारस्परिक सहयोग में विश्वास रखती है। किंतु यह इन सब संबंधों को अपने ढ़ंग से परिभाषित करती है जो वर्तमान संबंधों के प्रारूप से सर्वथा भिन्न है। इसके अनुसार कृषि को अर्थव्यवस्था का प्रमुख एवं आधारभूत क्रियाकलाप माना जाना चाहिए। प्राथमिक क्रियाकलाप के चारों ओर कृषि आधारित उद्योगों एवं आवश्यक कुटीर व लघु उद्योगों का गठन किया जाना चाहिए।

तकनोलॉजी हो जो पूंजी के प्रयोग, उत्पादन लागत और ऊर्जा के इन्पुट को न्यूनतम कर सके, आयातों पर बहुत अधिक निर्भर न हो, निर्यात क्षमता को बढ़ा सके, पर्यावरण को शुद्ध बनाये रख सके, स्थानीय साधनों, कौशल का कुशलतम प्रयोग कर सके, और आम जनता के लिए उपयोगी आम वस्तुओं का उत्पादन कर सके । इस दृष्टि से दोनों दिशाओं में एक साथ प्रयास करने होंगे (अ) देश में पहले से उपलब्ध परंपरागत तकनोलॉजी में सुधार कर उसे युगानुकूल बनाना; और (आ) आधुनिक तकनोलॉजी को देशानुकूल बनाना ।

हमारी एकात्म दृष्टि कृषि और उद्योग के बारे में 'यह' अथवा 'वह' की नीति को ठीक नहीं मानती। यह तो अर्थव्यवस्था के कृषि, सेवा एवं औद्योगिक क्षेत्रों के बीच पूरकता एवं पारस्परिक सहयोग में विश्वास रखती है। किंतु यह इन सब संबंधों को अपने ढ़ंग से परिभाषित करती है जो वर्तमान संबंधों के प्रारूप से सर्वथा भिन्न है। इसके अनुसार कृषि को अर्थव्यवस्था का प्रमुख एवं आधारभूत क्रियाकलाप माना जाना चाहिए। प्राथमिक क्रियाकलाप के चारों ओर कृषि आधारित उद्योगों एवं आवश्यक कुटीर व लघु उद्योगों का गठन किया जाना चाहिए। इस समूह-श्रृंखला के चारों ओर ऐसे भारी व बड़े उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिए जो प्रथम एवं द्वितीय समूहों की सहायता के लिए आवश्यक हों। भारत की विशाल अर्थव्यवस्था की विभिन्न समस्याओं का समाधान कर उसे शीघ्रता से प्रगति पथ पर अग्रसर करने की दृष्टि से आज सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका लघु उद्योग क्षेत्र की है। रोजगार वृद्धि, आय व धन के वितरण में समुचित समानता बनाए रखने, भारत की विशाल श्रमशक्ति, स्थानीय संसाधनों व कौशल का सर्वोत्तम उपयोग करने, औद्योगिक विकेंद्रीकरण तथा निर्यात बाजार के लिए विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करने आदि अनेक दृष्टियों से भारतीय अर्थव्यवस्था में लघुउद्योगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका व स्थान है। किंतु आज भारत के लघु उद्योग क्षेत्र को वित्तीय संसाधनों, समय एवं समुचित कीमत पर कच्चे माल की उपलब्धता, उचित दर पर पर्याप्त बिजली न मिल पाना, उत्पादन की बिक्री, सरकारी संरक्षण का अभाव व घोर उपेक्षा, बड़ी कंपनियों एवं विदेशी फर्मों की प्रतियोगिता आदि अनेक समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। इस ओर तुरंत ध्यान देकर भारत के लघु क्षेत्र को सशक्त व समर्थ बनाया जाना चाहिए।

सब प्रकार की कठिनाइयों, बाधाओं और समस्याओं के बावजूद देश का लघु उद्यम क्षेत्र रोजगार सृजन, जी.डी.पी में अंशदान और निर्यात में योगदान की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। 6000 से अधिक विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करता है। किंतु इतना सब कुछ होने के बाद भी शासन-प्रशासन की ओर से लघु उद्यम क्षेत्र उपेक्षित, प्रताड़ित और अपमानित होता रहा है। उसे नियम कानूनों की जटिलता एव झंझावातों में उलझाए रखा जाता है।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:30 PM Page 33

केंद्र स्तर पर सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम (MSME) मंत्रालय का गठन इस अपेक्षा से किया गया था कि वह इस क्षेत्र के विकास की ओर विशेष ध्यान. देगा। किंतु ऐसा लगता है कि कई बार वह प्रशासनिक रुटीन के चक्कर में फंसकर रह जाता है और लघु उद्यम की पीड़ा को ठीक से नहीं समझ पाता। यदि समूचे औद्योगिक जगत-बड़े उद्योगों और छोटे उद्योगों का एक समान दृष्टि से ही संचालन किया जाना होता तो फिर MSME मंत्रालय का अलग से गठन नहीं किया जाता। किंतु क्या और किन दृष्टियों से इन दोनों में अंतर किया जाना चाहिए, वह अनायास ही आँखों से ओझल हो जाता है। छोटे उद्यम हमारे उद्योग-परिवार के शिशु एवं बाल उद्यम हैं। जिस प्रकार से हम परिवार में शिशुओं को एवं बालकों के प्रति ममत्व भाव रखकर मधुरता एवं कोमलता से उनका पालन-पोषण एवं देखभाल करते हैं, हमें उसी भाव से लघु उद्यमों का भी संरक्षण, संवर्धन एवं प्रोत्साहन का काम करना चाहिए।

लघु उद्यम क्षेत्र में भी उद्यमों का वर्गीकरण सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के रूप में किया गया है। उद्यमों की संख्या और उसमें लगे लोगों की संख्या दोनों ही दृष्टियों से सर्वोच्च स्थान सूक्ष्म उद्यमों का है, इसमें भी रजिस्टर्ड उद्यमों की संख्या की तुलना में गैर-रजिस्टर्ड उद्यमों की संख्या अधिक हैं। इन पर अधिक सहृदयता से ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। जहाँ तक मध्यम उद्यमों का प्रश्न है यह समझ से परे हैं कि उन्हें क्यों कर सूक्ष्म एवं लघु उद्यमों के साथ एक ही श्रेणी में रखा गया है? कहीं ऐसा तो नहीं हो रहा कि वे तुलनात्मक रूप से बड़े होने के कारण सूक्ष्म एवं लघु उद्यमों का हक छीन रहे हैं। उनकी प्रकृति तो काफी कुछ बड़े उद्योगों से ही मिलती जुलती है। अतः इस वर्गीकरण के बारे में गंभीरता से पुनर्चिंतन किया जाना चाहिए।

अभी हाल ही में श्री प्रभात कुमार की अध्यक्षता में सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों के लिए एक राष्ट्रीय नीति के बारे में सुझाव देने के लिए एक कमेटी का गठन किया गया था। इस कमेटी ने भी लघु उद्यम क्षेत्र के महत्त्व, क्षमताओं एवं चुनौतियों के बारे में

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 34

इस क्षेत्र के उद्यमों के लिए संपूर्ण कार्य संचालन एवं सरकार से संबंधित कामों के लिए अनावश्यक जटिल एवं बोझिल प्रक्रिया के स्थान पर सरलतम प्रक्रिया अपनाई जाए। लघु उद्यमों के संचालन, नियमन-निर्देशन के लिए अनेक कानून-कायदों के स्थान पर एक सरल (जटिल नहीं) कानून बने-उनकी समस्याओं के समाधान के लिए-स्ब्ट्दद्यद्व 2ब्ट्दृस्रश्र2 द्वारा समय सीमा के अंतर्गत निर्णय-समाधान हो। इसी क्रम में लघु उद्यमों के संदर्भ में जीएसटी को लेकर अधिक व्यावाहारिक नीति बनाने के बारे में पुनर्चिंतन किए जाने की आवश्यकता है ताकि इस क्षेत्र को कमजोर होने से बचाया जा सके और इसे फलने-फूलने का समुचित अवसर मिल सके ।

काफी कुछ वास्तविकता के धरातल पर कहा है। कमेटी का मानना है कि एम.एस.एम उद्यमों को देश के भावी आर्थिक विकास क्षमता के संकेतक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। ये हमारी नवाचार क्षमता को प्रोत्साहित एवं सुदृढ़ करने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं। ये नए विचारों के जन्म लेने के केवल उत्प्रेरक ही नहीं हैं, बल्कि बाजार में नए विचारों को प्रस्तुत करने का माध्यम भी हैं। ये उद्यम बाजार की नई परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको ढाल लेने तथा सूचना प्रौद्यिगिकी के द्वारा उत्पन्न नए विचारों को स्वीकार करने में तत्पर रहते हैं। कमेटी का स्पष्ट मत है कि उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए बढ़ते हुए युवा उद्यमी वर्ग के लाभों को भुनाने की दृष्टि से नीतियों पर नए सिरे से विचार करना चाहिए। कमेटी ने यह भी स्वीकार किया है कि अभी तक विभिन्न सरकारों ने जो कार्यक्रम एवं योजनाएँ प्रारंभ की हैं उनका क्रियान्वयन समग्रता में न करके टुकड़े-टुकड़े में किया गया है, अतः वे इच्छित परिणाम नहीं दे पाई। अतः अब समग्र-समन्वित ढ़ंग से कार्यक्रम व योजनाएँ लागू की जानी चाहिएँ। आज एम.एस.एम उद्योग अनेक जंजालों के फंदे में फंसे हुए हैं, इन्हें इस फंदे से बाहर निकालकर विकास के पथ पर ले जाना होगा। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं के समाधान में लघु उद्यमों को सशक्त एवं समर्थ बनाने के लिए घिसी-पीटी पुरानी लकीर को छोड़कर नई सोच के साथ नीति-निर्माण एवं क्रियान्यवयन के प्रभावी उपाय किए जाएँ। इस दृष्टि से लघु उद्यमों की समस्याओं एवं चुनौतियों के समाधान के मार्ग तलाशने के लिए इस क्षेत्र के प्रतिनिधियों के साथ बैठकर खुला संवाद किया जाए और तदनुसार ही नीति-निर्माण हो।

लघु उद्यम क्षेत्र की क्षमताओं का यदि ठीक से उपयोग किया जाए, तो इसमें भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अपार संभावनाएँ हैं। ये तुलनात्मक रूप से कम पूंजी-लागत पर बड़ी मात्रा में रोजगार अवसरों का निर्माण कर सकते हैं। ये देश के ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगीकरण में सहायता कर सकते हैं, परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असमानता में कमी हो सकती हैं। लघु क्षेत्र 'सबका साथ सबका विकास (सर्वसमावेशी विकास) का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधारभूत क्षेत्र है। इसीलिए यह कहा जाता है कि - "Small is beautiful" यह स्वावलंबी, विकेंद्रित अर्थतंत्र की धुरी है।

लघु उद्यम क्षेत्र की दृष्टि से निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान देना उपयोगी हो सकता है।

1. सभी गैर-रजिस्टर्ड इकाइयों का बहुत सामान्य सी फीस लेकर और सरल प्रक्रिया से रजिस्ट्रेशन हो।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 35

2. इस क्षेत्र के उद्यमों के लिए संपूर्ण कार्य संचालन एवं सरकार से संबंधित कामों के लिए अनावश्यक जटिल एवं बोझिल प्रक्रिया के स्थान पर सरलतम प्रक्रिया अपनाई जाए। लघु उद्यमों के संचालन, नियमन-निर्देशन के लिए अनेक कानून-कायदों के स्थान पर एक सरल (जटिल नहीं) कानून बने-उनकी समस्याओं के समाधान के लिए-Single window द्वारा समय सीमा के अंतर्गत निर्णय-समाधान हो। इसी क्रम में लघु उद्यमों के संदर्भ में जीएसटी को लेकर अधिक व्यावाहारिक नीति बनाने के बारे में पुनर्चिंतन किए जाने की आवश्यकता है ताकि इस क्षेत्र को कमजोर होने से बचाया जा सके और इसे फलने-फूलने का समुचित अवसर मिल सके ।

3. सरकार की दृष्टि एवं व्यवहार सहयोगी, मित्रवत्, प्रोत्साहनकर्ता का रहे, अनावश्यक हस्तक्षेप या बाधक-रुकावट डालने वाले की न रहे।

4. इस क्षेत्र के लिए श्रमकानून एवं नियोजक-नियोजित संबंध का तंत्र, परंपरा एवं प्रणाली बड़े उद्योगों से अलग रहे-इसी प्रकार वित्त, विपणन, कच्चे माल की सही समय एवं उचित कीमत पर आपूर्ति, बिजली, कौशल विकास का तंत्र पर भी अलग से विचार हो।

5. विशेषकर कुछ वस्तुओं के उत्पादन एवं बिक्री के लिए इन्हें बड़े उद्योगों एवं विदेशी कंपनियों के आक्रमण से बचाने के लिए इन्हें संरक्षण देने की आवश्यकता है। अतः लघु उद्यम क्षेत्र के लिए आरक्षित वस्तुओं पर पुनर्विचार हो।

6. इस क्षेत्र के उद्यमों के मूल्यांकन की अलग पद्धति एवं नए मापदंड विकसित हों।

7. Micro small और Medium Enterprises की कुल संख्या, जी.डी.पी, निर्यात और रोजगार के अलग-अलग आंकड़ों का संकलन हो और इन तीनों के Treatment की भी अलग-अलग पद्धति बनें।

8. छोटे उद्यमियों का कच्चे माल के क्रय, विपणन, ब्रांडिंग, कौशल विकास आदि के लिए Networking बने। इस क्षेत्र में चलने वाली गलत प्रवृत्तियों को रोकने के लिए आंतरिक नैतिक नियमन प्रणाली बने, Internal Check and Balances विकसित हो।

9. Credit Guarantee Fund Scheme for Micro and Small Enterprises (2000) को और अधिक चुस्त, दुरुस्त, विस्तारित एवं प्रभावी बनाए जाने की आवश्यकता है।

10. MSME नीति बनाने के लिए सभी Stake holder के साथ विस्तृत बातचीत हो, इनसे भी प्रस्ताव मंगवाये जाए। यह प्रक्रिया प्रारंभ हुई है। इस क्षेत्र के विभिन्न घटकों की स्थिति, कार्यदशाओं, कार्यप्रणाली, समस्याओं, कठिनाइयों, क्षमताओं का समुचित एवं समग्र आकलन के लिए एक अध्ययन दल (Study Group) का गठन किया जावे।

11. उत्पादन-उद्यमों के अलावा भारत में सेवा उद्यमों के क्षेत्र में अपार संभावनाएँ हैं, पर अभी हम इसमें काफी पिछड़े हैं। अतः ध्यान देने की आवश्यकता है।

12. विश्व के विभिन्न देशों के MSME क्षेत्र के क्रियाकलापों एवं नीतियों का अध्ययन तो अवश्य करें, पर उनकी नकल न करें, उनसे आवश्यक सीख लेकर हम भारत की प्रकृति एवं आवश्यकताओं के अनुसार अपना संस्थागत ढ़ांचा एवं नीतिगत ढ़ांचा तैयार करें।

इन सब सुझावों के प्रकाश में नीति निर्धारण और शीघ्र व प्रभावी क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।

लेखक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री व चिंतक हैं।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 36

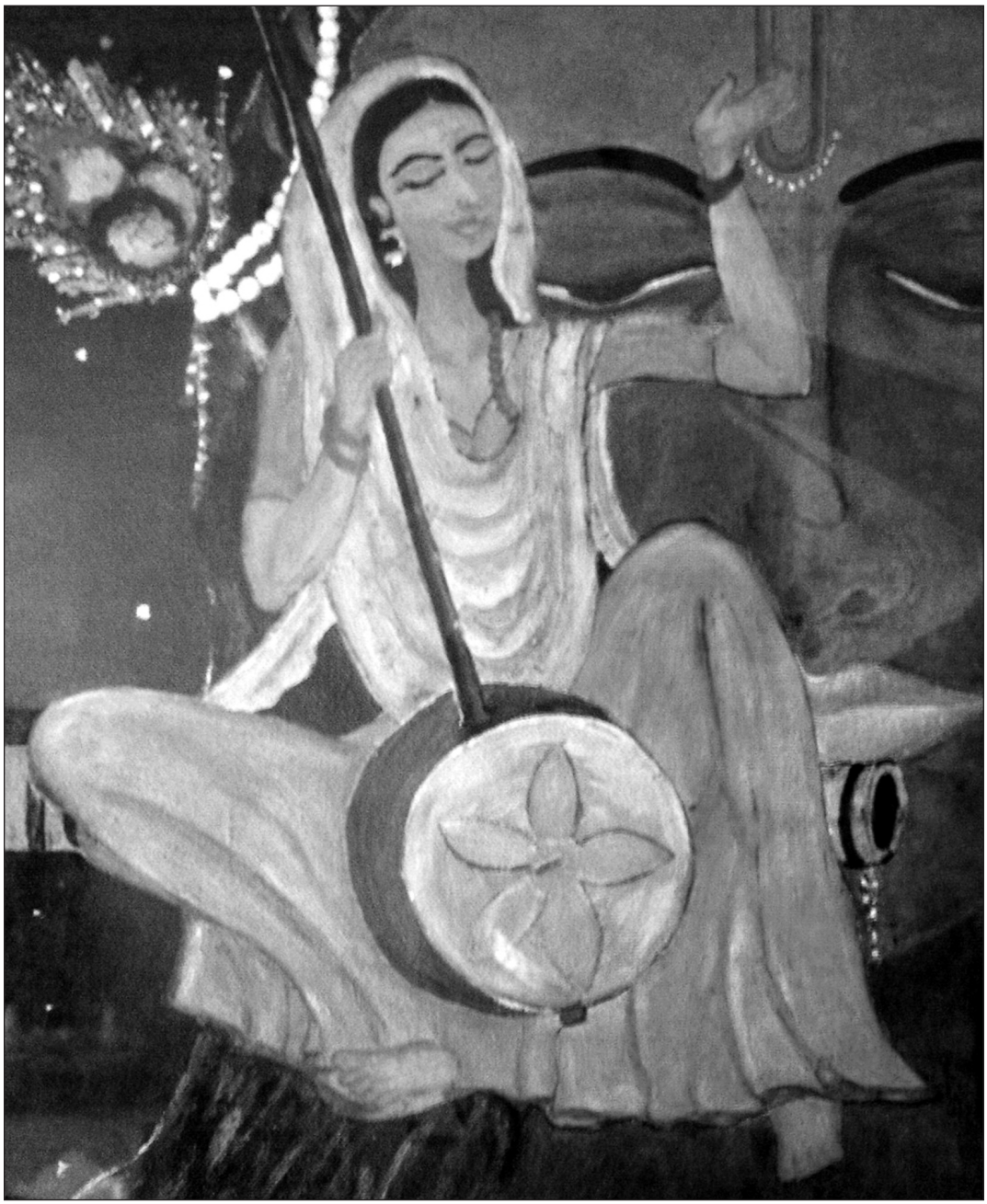

वैदिक ऋषिकाओं से ही नारी-संतों की एक समृद्ध परंपरा मिलती है। इन नारी संतों ने समाज में सत्य, न्याय, गुरु-भक्ति, समानता, नाम-जाप, वैराग्य, नैतिकता, संयम और ईमानदारी जैसे मूल्यों को प्रतिष्ठित करके समाज को शुद्ध सात्विक बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास किया। उनका प्रयास पुरुष संतों से कतई कमतर नहीं आँका जा सकता।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 37

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

नारी संतों के साहित्य में मूल्य-चेतना

भारतीय जीवन पद्धति में मूल्यों की संप्राप्ति के सर्वोत्तम स्वरूप को संत संज्ञा से अभिहित किया गया है। संतों को विभिन्न गुणों का समुच्चय और मानवीय मूल्यों का धारक और रक्षक स्वीकार किया गया है। संतत्व के क्षेत्र में हम प्रारंभिक भारतीय जीवन में पुरुष-नारी का भेद नहीं पाते, विश्व का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य 'ऋग्वेद' इसका प्रबल साक्ष्य देता है, जहाँ मंत्रद्रष्टा ऋषियों के साथ ऋषिका भी उपस्थित हैं। 'ऋग्वेद' का रचनाकाल सदियों तक विस्तृत है। मंत्रद्रष्टा ऋषियों की अनेक पीढ़ियाँ उसके साथ जुड़ी हैं। बहुत समय तक तो ये मंत्र मौखिक ही रहे, जिन्हें सुनकर याद किया जाता था। अतः श्रुत परंपरा से जुड़े होने के कारण वैदिक मंत्रों को 'श्रुति' भी कहा जाता है। 'ऋग्वेद' के प्रथम मंडल में मंत्रद्रष्टा ऋषियों के साथ हम ममता, रोशा और अगंस्त्यभार्या लोपामुद्रा को भी ऋषिका के रूप में उपस्थित पाते हैं। लोपामुद्रा विदर्भराज की कन्या थी। विवाह के पश्चात् इसने ऋषि का जीवन बिताया।

महर्षि अगस्त्य ने दक्षिण भारत में आर्यों द्वारा सामाजिक मर्यादा-भंग करने वाले बहिष्कृतजन व्रात्यों के मध्य आर्य-संस्कृति के विस्तार का प्रबल प्रयास किया था। दक्षिण में निशाचरी अपसंस्कृति के फैलाव को उन्होंने रोका था। वे उत्तर-दक्षिण के सांस्कृतिक समन्वय-सेतु थे। इस पवित्र कार्य में ऋषि-जीवन जीते हुए लोपामुद्रा ने उनका सदा साथ दिया। लोपामुद्रा कठोर परिश्रम करने वाली तेजस्विनी ऋषिका थी। उन्होंने विवाह का उद्देश्य भोग से इतर साधना को निश्चित किया। 'ऋग्वेद' के प्रथम मंडल के एक सूक्त में वे

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 38

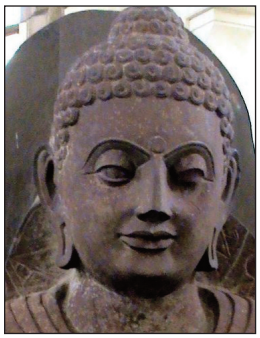

नारी-संतों की एक समृद्ध परंपरा बौद्ध-भिक्षुणियों के रूप में मिलती है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में कई देशों में आध्यात्मिक व्यग्रता और बैद्धिक विक्षोभ दिखाई दिया। इस दृष्टि से यह शताब्दी उल्लेखनीय है। चीन में लाओत्जु और कनफ्यूशस हुए, यूनान में परमेंडीज और एंपोडोक्लीज, फारस में जरथुस्त्र, इजराइल में पैगंबरों और भारत में महावीर तथा बुद्ध का अविर्भाव हुआ, इस काल में बहुत से चिंतकों और दृष्टाओं ने अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान की विरासत को आगे बढ़ाया और अपनी ओर से उसे नई भंगिमाएँ प्रदान की।

कहती हैं ''जैसे कुदाल, फावड़ा, करछी आदि खोदने के साधनों में भूमि को खोदता हुआ खेती करने वाला धान्य आदि पाकर सुखी होता है, वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या से राज्य, संतान और बल की इच्छा करते हुए उत्तम वेदार्थवेत्ता विद्वान पुष्ट होकर, उत्तम कर्मों और सिद्ध इच्छाओं को प्राप्त करता है, वैसे ही दोनों परस्पर एक-दूसरे को स्वीकार करते हुए पति-पत्नी हों।''[1] इस सूक्त में लोपामुद्रा ने चार मूल्यों को प्रतिस्थापित किया है –

1. ब्रह्मचर्य 2. विद्या, 3. कर्म-साधना से प्राप्त वैभव, 4. दांपत्य

लोपामुद्रा केवल काव्य में ही इन मूल्यों को स्थापित नहीं करती, उन्होंने अपने आचरण से भी इन मूल्यों की प्रतिष्ठा की थी।

'ऋग्वेद' के दसवें मंडल के 107वें सूक्त की ऋषिका दक्षिणा प्रजापत्या हैं। इस सूक्त के वैकल्पिक ऋषि दिव्य आंगरिस हैं। यह पता नहीं लगता कि ये प्रजापति की पुत्री थीं, परंतु उन्होंने दान के मूल्य की प्रतिष्ठा की है। ये एक मंत्र में कहती हैं -- ''उदारतापूर्वक दान देने वाले व्यक्ति कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, न ही वे दुर्गति को प्राप्त होते हैं। वे दुख, क्लेश तथा पीड़ाओं से मुक्त रहते हैं। इस वसुंधरा पर जो भी स्वर्गीय सुख हैं, वे सभी उन्हें दक्षिणा से प्राप्त होते हैं।''

भारत में अर्थ को पुरुषार्थ में परिगणित किया गया है और धन की तीन गतियाँ दान, भोग और नाश निर्धारित की गई हैं। उसका सीधा मंतव्य उचित व वैध साधनों से धन कमाना व उसे विद्वानों, ऋषियों, समाज-सेवियों और दीन-दुखियों को दान करना बताया गया है। दान नहीं किया तो भोग करें। दान से धन उचित पात्रों तक पहुँचेगा, भोग से वह समाज में प्रचलित रहेगा। बंद होकर वह तिजोरी में नहीं सड़ेगा अन्यथा वह नष्ट ही होगा। दान की महत्ता समाज के अर्थशास्त्र को ठीक रखने के लिए स्थापित की गई है। इस दान को एक मूल्य के रूप में वैदिक ऋषिका ने भी महत्ता प्रदान की है, इस ऋषिका ने दानदाता के युद्धक्षेत्र में शत्रुओं से सुरक्षित रहने की भी चर्चा एक मंत्र में की है।

नारी-संतों की एक समृद्ध परंपरा बौद्ध-भिक्षुणियों के रूप में मिलती है। ''ईसा पूर्व छठी शताब्दी में कई देशों में आध्यात्मिक व्यग्रता और बैद्धिक विक्षोभ दिखाई दिया। इस दृष्टि से यह शताब्दी उल्लेखनीय है। चीन में लाओत्जु और कनफ्यूशस हुए, यूनान में परमेंडीज और एंपोडोक्लीज, फारस में जरथुस्त्र, इजराइल में पैगंबरों और भारत में महावीर तथा बुद्ध का अविर्भाव हुआ, इस काल में बहुत से चिंतकों और दृष्टाओं ने अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान की विरासत को आगे बढ़ाया और अपनी ओर से उसे नई भंगिमाएँ प्रदान की।''[2]

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 39

बुद्ध ने ऐसा बिलकुल नहीं सोचा था कि वे कोई नया धर्म चला रहे हैं। वे हिंदू के रूप में शाक्य क्षत्रिय वंश में जन्में और हिंदू के रूप में मरे। बुद्ध का धर्म प्रगतिगामी है। उन्होंने जन्मना-श्रेष्ठता को नकारकर, आचरण की श्रेष्ठता को स्वीकारा, परंतु नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण समीचीन नहीं था। वे प्रारंभ में स्त्रियों को बौद्ध धर्म में दीक्षित नहीं करना चाहते थे, परंतु जब परिस्थितिवश उन्हें आम्रपाली और अपनी पत्नी यशोधरा को प्रव्रज्या देनी पड़ी, तो उन्होंने आनंद से कहा – ''आनंद! वैसे सद्धर्म 1000 वर्ष चलता, परंतु नारियों के प्रव्रजित होने के कारण वह अब 500 वर्ष ही चलेगा।''

अस्तु, साहित्य में बौद्ध-भिक्षुणियों की समृद्ध परंपरा 'थेरी गाथाओं' के रूप में है। थेर गाथा बौद्ध भिक्षुओं की हैं और थेरी गाथाएँ भिक्षुणियों की हैं। थेरी गाथाओं में 522 गाथाओं का संकलन है, जिसमें 100 थेरियों के उद्‌गार हैं। बुद्ध वचनों के साथ प्रारंभ में उनके प्रसंग भी दिए गए हैं'। थेरी गाथा की टीका 'परमत्यदीपनी' पाँचवी शताब्दी की रचना मानी जाती है। इसीलिए लगभग एक हजार वर्षों तक मौखिक रूप में प्रचलित यह इतिहास 'स्मृत इतिहास' है। 'खुद्दकनिकाय' के 15 ग्रंथों में उदान भी शामिल है, इन ग्रंथों में 'बुद्ध वचनों' के साथ प्रारंभ में उनके प्रसंग भी दे दिए गए हैं, जिनसे उनके अर्थ और अधिक स्पष्ट हो सकें। इसी पद्धति का निर्वाह थेरी गाथा में किया गया है।

इन गाथाओं में विभिन्न वर्गों की महिलाएँ सम्मिलित हैं, खेमा, सुमना, सैला और सुमेधा मगध और आलवी के राजवंशों की महिलाएँ हैं। महाप्रजापति गोमती, अंपतरा आदि शाक्य और लिच्छवि गणतंत्रों के सामंतों की कन्याएँ थीं। मौत्रिका, अंपतरा, उत्तमा, चाला, उपचाला, शिशूपचाला, रोहिणी, सुंदरी, शुभा, भद्रा, कापिलायिनी, मुक्ता, नंदा, सकुला, चंदा, गुप्ता, दंतिका और सोमा विप्र वंश की कन्याएँ थीं। पूर्णा, चित्रा, श्यामा, उब्बिरी, शुक्ला, धम्मादिंता, उत्तमा, भद्रा, कुण्डलकेशा, पटाचारा, सुजाता और अनोपामा आदि गृहपति व वैश्य वर्ग की कन्याएँ थीं। अद्रढ़कासी, अभयमाता, विमला, और अम्बा पाली, गणिकाएँ थीं। शुभा सुनार की कन्या थी और पूर्णिका दास की कन्या थी।

बौद्ध धर्म में संसार से 'विरक्ति' को मूल्य की तरह प्रतिष्ठित किया गया है। संसार दुखमय है, नाशवान है, जो जनमा है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। संसार में रोग, शोक, संताप, इच्छित की अप्राप्ति और अनिच्छित की प्राप्ति जैसे दुख हैं। इनसे मुक्ति वैराग्य और शांति में ही है। एक भिक्षुणी के अनूदित उद्‌गार द्रष्टव्य हैं–

संन्यास लेकर मैंने घर छोड़ा
प्यारी संतान छोड़ी
प्यारे पशुओं को छोड़ा
राग और द्वेष छोड़ा

साहित्य में बौद्ध-भिक्षुणियों की समृद्ध परंपरा 'थेरी गाथाओं' के रूप में है। थेर गाथा बौद्ध भिक्षुओं की है और थेरी गाथाएं भिक्षुणियों की हैं। थेरी गाथाओं में 522 गाथाओं का संकलन है, जिसमें 100 थेरियों के उद्‌गार हैं। बुद्ध वचनों के साथ प्रारंभ में उनके प्रसंग भी दिए गए हैं'। थेरी गाथा की टीका 'परमत्यदीपनी' पाँचवी शताब्दी की रचना मानी जाती है। इसीलिए लगभग एक हजार वर्षों तक मौखिक रूप में प्रचलित यह इतिहास 'स्मृत इतिहास' है। 'खुद्दकनिकाय' के 15 ग्रंथों में उदान भी शामिल है, इन ग्रंथों में 'बुद्ध वचनों' के साथ प्रारंभ में उनके प्रसंग भी दे दिए गए हैं, जिनसे उनके अर्थ और अधिक स्पष्ट हो सकें। इसी पद्धति का निर्वाह थेरी गाथा में किया गया है।''

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 40

सभी नारी संत संन्यास में जीवन के दुखों की आत्यंतिक निवृत्ति स्वीकार करतीं हैं। इनके व्यक्तिगत जीवन में किसी न किसी दुःख ने इन्हें संन्यास की ओर प्रेरित किया। ये उसी संन्यास से शांति पातीं हैं और अपने काव्य और आचरण से संन्यास व वैराग्य को जीवन के दुखों से निवृत्तिकारक मूल्य की तरह प्रतिष्ठित करती हैं।

अविद्या को छोड़कर मैं विरक्त हुई
तृष्णा को समूल खोदकर
साक्षात्कार किया मैंने निर्वाण की परमशांति का
अब मैं परमशांत हो गई हूँ ।[3]

उब्बिरी की गाथा में मृत्यु को अनिवार्य बताया गया है और बुद्ध के उपदेश से उब्बिरी अपनी प्यारी पुत्री 'जीवा' के शोक को भूल जाती है। वह शांति प्राप्त करती है। पति और दो पुत्रों को खोने वाली पटाचारा की गाथा भी इसी तरह बुद्ध के उपदेश से शोक-विनाश की गाथा है। अड़ढ़कासी, विमला, अभयमाता और आम्रपाली, गणिकाएँ हैं। इनकी गाथा 'मानव मात्र की एकता और समता के मूल्य को प्रतिष्ठित करती है। बुद्ध ने सर्वप्रथम पतिता नारियों को धर्म के क्षेत्र में प्रवेश देकर उनके उद्धार का आश्वासन दिया। आगे चलकर भक्ति मार्ग में यह एक सार्थक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। माना गया है कि नीच-ऊँच, स्त्री-पुरुष, पुण्यात्मा-पापात्मा, ब्राह्मण, शूद्र सभी प्रभु के दरबार में बराबर हैं। इन भिक्षुणियों ने अपने उद्‌गारों में अपने अतीत का स्मरण किया है। रूप में वैभव की क्षणभंगुरता को स्वीकार किया है और माना है कि प्रव्रजित होकर वे जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो गईं हैं। अड़ढ़कासी अपने उस अतीत कालीन सौंदर्य को अपने लिए घृणा का विषय बताती है और वैराग्य को एक मूल्य की भाँति प्रतिष्ठित करती है, क्योंकि वह मानती है कि प्रव्रजित होकर अब मुझे 'मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्कर में और घूमना नहीं है।

पूर्णिका दासी-पुत्री थी, परंतु उसने तर्क से एक ब्राह्मण को परास्त करके स्नान से शुद्धि को गलत ठहराया। इससे उसे दासत्व से मुक्ति मिली और वह प्रख्यात भिक्षुणी बनी। ये सभी नारियाँ सन्यास में जीवन के दुखों की आत्यंतिक निवृत्ति स्वीकार करती हैं। इनके व्यक्तिगत जीवन में किसी न किसी दुःख ने इन्हें सन्यास की ओर प्रेरित किया। ये उसी सन्यास से शांति पाती हैं और अपने काव्य और आचरण से सन्यास व वैराग्य को जीवन के दुखों से निवृत्तिकारक मूल्य की तरह प्रतिष्ठित करती हैं।

बौद्ध धर्म के उपरांत नारी संतों की एक समृद्ध-परंपरा हमें निर्गुण संप्रदाय में भक्तिकाल के प्रारंभ में मिलती है। इस धारा की संत नारियों में उमा, मुक्ताबाई, पार्वती, सहजोबाई, दयाबाई और इंद्रामती के नाम लिए जा सकते हैं। उमा के कुछ पद नागरी प्रचारिणी सभा की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट के एक प्रकाशित ग्रंथ में मिलते हैं। इनमें गुरु-भक्ति और निर्गुण ब्रह्म की उपासना के तत्त्व उपलब्ध होते हैं। मुक्ताबाई महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर की बहन थीं। इनके काव्य में भी भक्ति और गुरु-भक्ति प्रतिष्ठित है। पार्वती किसी निःस्पृह, निःस्वार्थ, काम को भस्म करने वाले गुरु की शिष्या थीं, इनकी दृष्टि से जगत में विराग, यौवन की उपेक्षा और कामिनी से विरक्ति की साधना से तपकर जो अपने घर में नाद और बिंदु का प्रकाश व्याप्त कर चुका है, वही सार्थक पुरुष है, ऐसे ही सार्थक पुरुष, गुरु की पार्वती सेवा करती है –

धन जोवन की करे न आस
चित न रखे कामिनी-पास
नाद विंदु जाके घर झरै
ताकी सेवा पारवती करै।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 41

आशय यह है कि संत पार्वती 'गुरुभक्ति' और 'संसार से विरक्ति' दोनों ही मूल्यों को अंगीकृत करती हैं। इनके काव्य में योग वर्णन तथा गुरु महिमा वर्णन के पद अधिक मिलते हैं। शुष्क योग ही इनके पदों का विषय है, जिनमें न तो सूफी मत के प्रेमतत्त्व का पुट है, न कोई दूसरी रागात्मक अनुभूतियों का जो हृदय को स्पर्श कर सके। फिर भी गुरु भक्ति का वर्णन इनके काव्य में मार्मिक है और वह एक मूल्य की प्रतिष्ठा पा गया है।

निर्गुण संप्रदाय के एक मत 'चरणदासी' के प्रवर्तक संत चरणदास थे, इनकी प्रमुख दो शिष्याएँ नारी-संतों में प्रमुख स्थान रखती हैं। वे हैं सहजोबाई और दयाबाई। ये दोनों चचेरी बहनें थीं। डॉ. सावित्री सिन्हा इन्हें दिल्ली के ढूसर वैश्य और डॉ. रामचंद्र तिवारी इन्हें मेवात (राजपूताना) के डेहरा नाम के स्थान के ढूसर वैश्य कुल की कन्या मानते हैं, परंतु चरणदास की शिष्या होने के संबंध में दोनों एक मत हैं। ''अपने गुरु के साथ ही दिल्ली आकर इन्होंने भी संत जीवन व्यतीत किया। गुरु की महत्ता, नाम माहात्म्य, अजपाजाप, संसार की क्षणभंगुरता और उसके प्रपंचों से दूर रहने की चेतावनी, काम- क्रोध-लोभ-मोह-मान आदि का त्याग, कर्मफल पर विश्वास, प्रेम तत्त्व का विधि-निषेध निरपेक्ष-स्थितिबोध और ब्रह्मत्व का निर्गुण सगुण निर्पेक्ष अनिर्वचनीय स्थिति का अनुभूतिपरक वर्णन इनकी वाणियों के प्रमुख विषय हैं। चौपाई और कुंडलियाँ छंदों का प्रयोग इन्होंने अधिक किया है।''[4]

अगर भारत की भावात्मकता एकता के तत्त्व खोजे जाएँ तो उनमें अद्वैत वेदांत और हिंदी भाषा के अतिरिक्त गुरु भक्ति को भी स्थान मिलेगा। सहजोबाई और दयाबाई दोनों में अपने गुरु चरणदास जी के प्रति गहरी आस्था है। सहजो ने 'चरणदास' गुरुदेव, सेव मोहि अगम बसायो। जोग जुगति से दुर्लभ सुलभ करि दुष्टि दिखाओ।'' कहकर अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है तथा अपने योगमार्गी होने की घोषणा भी की है। सहजो का लिखा 'सहजप्रकाश' नामक ग्रंथ उपलब्ध है। इसमें तीन अलग-अलग ग्रंथ हैं। उन्होंने गुरु को 'निर्मल आनंद' का दाता और जीव की सभी आपदाएँ हरने वाला बताया है और स्पष्ट कहा है कि *''राम तजूँ पर गुरु न विसारूँ''*। गुरु सेवा अष्टयाम करने से शिष्य को मोक्ष मिलता है, ऐसा उन्होंने स्पष्ट कहा है। 'सतगुरु महिमा और गुरु महिमा' इन खंडों में गुरुभक्ति के प्रभावी दोहे हैं।

दयाबाई की रचनाओं में उनके तीन नाम मिलते हैं– दया, दासी और दयाकुँवरि। इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं–

1. दया बोध 2. विनयमालिका

इन्होंने भी गुरु भक्ति को मूल्य की तरह प्रतिष्ठित किया है। दयाबाई ने सतगुरु को ब्रह्मस्वरूप माना है। उन्होंने भी अपने गुरु का चरणदास नाम घोषित करते हुए लिखा है –

चरनदास गुरुदेव जू ब्रह्मरूप सुखधाम,
ताप हरन सब सुख करन, दया करत परनाम।

चरणदास के संप्रदाय में निर्गुण की साधना के साथ भागवत के प्रेम तत्त्व को भी प्रधानता मिली थी। दया में

अगर भारत की भावात्मकता एकता के तत्त्व खोजे जाएँ तो उनमें अद्वैत वेदांत और हिंदी भाषा के अतिरिक्त गुरु भक्ति को भी स्थान मिलेगा। सहजोबाई और दयाबाई दोनों में अपने गुरु चरणदास जी के प्रति गहरी आस्था है। सहजो ने 'चरणदास' गुरुदेव, सेव मोहि अगम बसायो। जोग जुगति से दुर्लभ सुलभ करि दुष्टि दिखाओ।'' कहकर अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है तथा अपने योगमार्गी होने की घोषणा भी की है।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 42

ज्ञान की शुष्कता के साथ प्रेम तत्त्व का भी निरूपण है। कहीं-कहीं तो उनका ब्रह्म साकार ब्रह्म ही प्रतीत होता है।

इन दोनों नारी-संतों ने नाम-स्मरण, गुरु-भक्ति, वैराग्य और भगवत् प्रेम को मूल्य के रूप में स्वीकृति प्रदान की है और इन्हें प्रतिष्ठित करके समाज को सुसंस्कृत बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास किया है।

निर्गुण संप्रदाय के साथ ही सगुण भक्ति साहित्य में भी नारी संतों का स्थान है। कृष्ण-भक्ति के राधाबल्लभ संप्रदाय के आदर्शों के अनुसार रामोपासना में भी माधुर्य भाव का समावेश हो गया था। इस भाव की भक्ति की प्रमुख कवयित्री प्रेम सखी हैं। ये राम काव्य की श्रेष्ठ कवयित्री हैं। इन्होंने स्फुट पद लिखे हैं तथा कुछ कवित्त और सवैयों की भी रचना की है। इन्होंने अपने काव्य में राम भक्ति को सब दैहिक, दैविक और भौतिक तापों की औषधि बताया है। राम भक्ति की अपेक्षा हिंदी काव्य में हम कृष्ण भक्त संतों और कवयित्रियों की संख्या अधिक पाते हैं।

कृष्ण भक्त नारी संतों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाम मीराबाई का है। नाभादास कृत 'भक्तमाल' तथा ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली' में उन्हें गोपियों का अवतार मानकर उनकी प्रशंसा की गई है, जबकि 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मैं उनके लिए निंदा सूचक शब्दावली का प्रयोग है, परंतु जैसे भक्तिकालीन काव्य में कबीर अकेले हैं, अपना कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं रखते, उसी प्रकार नारी संतों में मीरा भी अकेली हैं। उन्होंने राजवंश की सामाजिक मर्यादा को तोड़ा, पति के साथ सती न होकर तत्कालीन सांस्कृतिक मर्यादा को चुनौती दी और कृष्ण भक्ति के किसी संप्रदाय में दीक्षित न होकर, धार्मिक मर्यादा पर भी आघात किया। वे सर्वतोभावेन स्वतंत्र चिंतन वाली क्रांतिकारिणी कवियित्री हैं। उनकी भक्ति में दांपत्य प्रेम है। विरह की आकुलता नारी-मन की कोमलता अपने आलौकिक प्रियतम कृष्ण से मिलने की व्याकुलता आदि उनके प्रिय विषय हैं। परंतु मीरा अपने आचरण से भक्ति के आदर्श के अतिरिक्त नारी के गौरवपूर्ण चरित्र को भी प्रतिफलित करती दिखाई पड़ती हैं। मीरा ने कृष्ण की कल्पना

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 43

निर्गुण संप्रदाय के साथ ही सगुण भक्ति साहित्य में भी नारी संतों का स्थान है। कृष्ण-भक्ति के राधाबल्लभ संप्रदाय के आदर्शों के अनुसार रामोपासना में भी माधुर्य भाव का समावेश हो गया था। इस भाव की भक्ति की प्रमुख कवयित्री प्रेम सखी हैं। ये राम काव्य की श्रेष्ठ कवयित्री हैं। इन्होंने स्फुट पद लिखे हैं तथा कुछ कवित्त और सवैयों की भी रचना की है। इन्होंने अपने काव्य में राम भक्ति को सब दैहिक, दैविक और भौतिक तापों की औषधि बताया है।

किशोर और युवा के रूप में की थी। वे चैतन्य महाप्रभु की भक्ति भावना के अधिक निकट थीं, परंतु दीक्षा उन्होंने किसी संप्रदाय में नहीं ली। इसलिए वे नारी-स्वातंत्र्य के आदर्श रूप की प्रतिष्ठा कर सकीं। उन्होंने एक पद में कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति और अपनी निर्भीकता का परिचय दिया है –

मैंने गोविन्द के गुण गाणा
राजा रूठे, नगरी राखे, हरि रूठे कहाँ जाणा
राणे भेज्या जहर प्याला, अमृत करि पी जाणा
मैंने गोविन्द के गुण गाणा।
डबिया में भेज्या जी भुजंगम, सालिग्राम करि जाणा
मीरा तो अब प्रेम दीवाणी, सांवलिया वर पाणा। [5]

वस्तुतः मीरा ने भक्ति और निष्ठा को एकांतिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया। एक और पद में मीरा ने कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति, माया की क्षणभंगुरता, शरीर की नश्वरता और कृष्ण की अहेतुकी कृपा का उल्लेख किया है। साथ ही भक्ति न करके केवल भगवा वस्त्र पहनकर सन्यासी होने वालों की आलोचना भी की है –

'' भज मन चरण-कमल अविनासी
जीताई दीसां धरण गगण माँ तेताई उट्ठ जासी
तीरथ वरतां ग्यान कथता कहालयां करवत कासी
यो देही को गरब न करणा, माटी में मिल जासी
यो संसार चहर राँ बाजी, सांझ पड़यां उठ जासी
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, कट्यां म्हांरी गांसी।।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि वैदिक ऋषिकाओं से ही नारी-संतों की एक समृद्ध परंपरा मिलती है। इन नारी संतों ने समाज में सत्य, न्याय, गुरु-भक्ति, समानता, नाम-जाप, वैराग्य, नैतिकता, संयम और ईमानदारी जैसे मूल्यों को प्रतिष्ठित करके समाज को शुद्ध सात्विक बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास किया। उनका प्रयास पुरुष संतों से कतई कमतर नहीं आँका जा सकता।

लेखक प्रसिद्ध समालोचक व लेखक हैं।

संदर्भ

1. ऋग्वेद 10-1791-1-2
2. हमारी संस्कृति-डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन-अनुवादक उमापतिराय चंदेल पृ.-74 राजपाल एंड संस कश्मीरी गेट, दिल्ली।
3. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास-डॉ. सुमन राजे- पृ. 89 भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली प्रथम संस्करण-2003
4. मध्यकालीन हिंदी-कवयित्रियाँ-डॉ. सावित्री सिन्हा-पृ.50 हिंदी अनुसंधान परिषद, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
5. मैं गिरधर की, गिरधर मेरे-संपा. गंगा नारायण माथुर अद्वैत-पृ.-207, अद्वैत प्रकाशन 14, ग्राम गोपाल पुरा (बाईपास) उदयपुर।
6. मेरे तो गिरधर गोपाल-ब्रजेंद्र कुमार सिंघल- पृ.179, भारतीय विद्या मंदिर, बीकानेर, कोलकाता।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 44

भारतीय दर्शनानुसार न्याय प्रक्रिया धर्माधृत है। मानव द्वारा धार्मिक-नैतिक व सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन ही अपराध है। न्यायव्यवस्था वही श्रेष्ठ है, जो अपराधी को दंडित करने के साथ-साथ भविष्य में उसकी आपराधिक वृत्ति को भी कमरने का प्रयास करें। विश्व स्तर पर धार्मिक ग्रंथों से उद्धृत न्याय के परिपेक्ष में न्याय का विकास क्रम एवं अध्यात्म व न्याय आदि विषय पर इस लेख में विचार किया गया है।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 45

मुन्ना लाल जैन

धर्मदर्शन और न्यायप्रज्ञा

भारत के उच्चतम न्यायालय के प्रमुख न्यायाधीश के कक्ष में रखी उनकी कुर्सी के पीछे लिखा हुआ है–

'यतो धर्मस्ततो जय' अर्थात् जहाँ धर्म है वहीं जय है।

इसी प्रकार अखिल भारतीय अधिवक्ता परिषद् द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'न्यायप्रवाह' के मुख्यपृष्ठ पर लिख हुआ है

'न्याय मम् धर्मः' अर्थात् न्याय ही मेरा धर्म है।

इसके अतिरिक्ति भी दैनिक जीवन में हम सुनते हैं कि 'सत्यं वद धर्मम् चर' अर्थात् सदा सत्य बोलो और धर्म का पालन करो।

प्रत्येक व्यक्ति धर्म को जानने की इच्छा रखता है 'अथातो धर्मजिज्ञासा'। धर्म को जानने की इच्छा सब में है। सब जानना चाहते हैं कि जीवन में धर्म की प्रासंगिकता क्या है, क्योंकि 'धर्म' शब्द का प्रयोग विभिन्न शीर्ष स्थानों पर होता है, अतः संक्षेप में धर्म की व्याख्या करते हैं ।

'धृ' धातु से 'धर्म' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। इसका अभिप्राय है धरना, धारणा, ग्रहण करना, पकड़ना या स्थापित करना।

'शब्दकल्पद्रुम' शब्दकोश में धर्म की परिभाषा देते हुए लिखा है कि *'धरति लोकान् धर्म :।'*

'वामन श्री आप्टे शब्दकोश' में धर्म की परिभाषा देते हुए लिखा है– *'ध्रियते लोकोऽनेन धरति लोकं वा धारणाद् धर्म :।'*

विश्व के सबसे प्रथम लिखे गए धर्म ग्रंथ वेद में धर्म के स्थान पर 'ऋत्' शब्द का प्रयोग हुआ है। वेदों में 'ऋत्' का अभिप्राय सत्य का पालन करना है।

'छान्दोग्योपनिषद्' में भी स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि पूर्व में आद्यशक्ति थी। केवल एक सत् था। एक से उत्पन्न अन्य से

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 46

इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का अपना-अपना गुणधर्म है, अपना-अपना स्वभाव है, जो गुणधर्म वस्तु से कदापि पृथक नहीं होता। समय के प्रभाव से तथा विजातीय पदार्थ के प्रभाव से इस पदार्थ की प्रतीति कुछ पृथक रूप से हो सकती है लेकिन उसके गुण-धर्म में लेशमात्र भी परिवर्तन संभव नहीं है, उदाहरण के लिए पानी का गुणधर्म या स्वभाव शीतलता है इसका गुणधर्म समाप्त नहीं किया जा सकता है।

एकात्मता आवश्यक थी। अतः इस समस्त जगत को धारण करके उसे संभालने के लिए धर्म की उत्पति हुई ।

'धियते विश्वस्य लोकः अनेन स धर्मः''

और

''धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा''

धर्म कोई दृश्य-स्पृश्य वस्तु नहीं है, बल्कि एक निराकार तत्त्व है। जैन दर्शन में भी धर्म की बहुत सुंदर व्याख्या की गई है। जैन धर्म के संस्थापकों ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है

''वत्थु सुहावो धम्म''

अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है।

इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का अपना-अपना गुणधर्म है, अपना-अपना स्वभाव है, जो गुणधर्म वस्तु से कदापि पृथक नहीं होता। समय के प्रभाव से तथा विजातीय पदार्थ के प्रभाव से इस पदार्थ की प्रतीति कुछ पृथक रूप से हो सकती है लेकिन उसके गुण-धर्म में लेशमात्र भी परिवर्तन संभव नहीं है, उदाहरण के लिए पानी का गुणधर्म या स्वभाव शीतलता है। इसका गुणधर्म समाप्त नहीं किया जा सकता है।

मनु धर्म के प्रवक्ता माने जाते हैं। धर्म को कई स्तरों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे लोकधर्म, शास्त्र धर्म, राष्ट्रनियामक धर्म, समाजनियामक धर्म, कुटुम्बनियामक धर्म आदि-आदि।

''धारणाद् धर्ममित्याहुर् धर्मो धारयते प्रजाः''

उपर्युक्त वाक्य से स्पष्ट है कि प्रजा को धारण करने वाला धर्म है, अर्थात् प्रजा को न्याय प्राप्त हो इसलिए धर्म की आवश्यकता अनुभव हुई और धर्म तथा न्याय का संबंध स्थापित हुआ।

प्रश्न उठा कि न्याय कौन दे? इसके लिए 'राजा' नामक व्यक्ति का उद्भव तथा 'राज्य' नामक संस्था की उत्पति हुई। प्रारंभ में राज्य और राजा की उत्पति 'दैवी सिद्धांत' के आधार पर मानी गई और स्पष्ट शब्दों में कहा गया कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है। राजा का निर्णय स्वयं ईश्वर का निर्णय है। राजा द्वारा दिया गया न्याय भगवान् द्वारा दिया गया न्याय है।

भारतीय वाङ्मय में वर्णन आता है कि देव-असुर संग्राम में देव हार गए क्योंकि देवताओं के समाज में कोई राजा नहीं था। अतः इंद्र को देवताओं का राजा बनाया गया तथा न्याय व धर्म की स्थापना हुई। आगे यह 'राजा' प्रथा सामान्य जीवन तक नीचे तक उतर कर आई जिसमें लोगों द्वारा की गई अनीतियों या अन्यायों को दंड राजा द्वारा निर्धारित किया गया।

''रक्षार्थमस्य लोकस्य राजानमसृजत्प्रभुः''।

मनु स्मृति, 7-3

महाभारत के 'शांतिपर्व' में लिखा है कि मानव समाज से उच्छृंखलता, अव्यवस्था, अनास्था, अराजकता, उग्रवाद, मनमानी, नृशंस हत्या इन सबको व्यवस्थित करने के लिए राजा की आवश्यकता का अनुभव होता है।

ब्रह्मा जी ने दंड-नीति का उपदेश दिया।

न्याय-अन्याय से प्रेरित मानव के आचरणों को

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 47

किसी युग विशेष की धाराओं में न तो समेटा जा सकता है और न ही उसे नियंत्रित किया जा सकता है।

प्रागैतिहासिक काल से ही न्याय स्थापित करने के लिए दंड का विधान है। जिस समय मानव वृक्षों के द्वारा प्रदत्त फलों का उपभोग कर अपना जीवन यापन करता था और जब व्यवस्थित समाज का निर्माण नहीं हुआ था, तब भी न्याय व्यवस्था थी।

जैन शास्त्रों में वर्णन आता है कि उस समय तीन प्रकार के 'दंड' देने की व्यवस्था थी - (1) हाकार (2) माकार (3) धिकार। इसका अभिप्राय है कि जब कोई व्यक्ति अन्याय का कार्य करता था तो उसे 'हाकार' दंड दिया जाता था, जिसका अर्थ था हाय तूने क्या कर दिया। इसके बाद 'माकार' दंड दिया जाता था जिसमें कहा जाता था– 'हे प्राणी! तू ऐसा मत कर।' इससे अधिक कठोर दंड था– 'धिकार', यानी ऐसा अन्याय करने पर तुझे धिक्कार है। इन्हीं तीनों प्रकार के दंडों से व्यक्ति का जीवन परिवर्तित हो जाता था।

समय के व्यतीत होने के साथ-साथ नदियों के किनारे ग्राम जीवन का विकास हुआ, कृषि, मसि और असि के ज्ञान का प्रसार हुआ। मानव जीवन में जटिलता आई। उनके न्यायिक जीवन यापन के लिए कुछ रीति -नीतियों का प्रादुर्भाव हुआ। जिनको विभिन्न ऋषियों के नाम से स्मृति और नीति का नाम दिया गया। जिनमें मनु-स्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति-शुक्र-नीति-विदुर नीति, चाणक्य-नीति आदि आदि।

'नीति का क्रियात्मक रूप न्याय है'

न्याय निर्दोषता का रूप है और निर्दोषता के बिना जीवन की उपयोगिता सिद्ध नहीं होती है। दोषयुक्त जीवन बेकार है। दोष के विनाश के लिए धार्मिक ग्रंथों में दंड की व्यवस्था की गई है जैसे नारद पुराण में लिखा है–

'नष्टे धर्मे मनुष्याणां व्यवहारः प्रवर्तते
दृष्टा च व्यवहाराणं राजा दंडधरः स्मृतः।'

जब मनुष्यों का धर्म नष्ट हो जाता है या धर्म समझ में नहीं आता तब 'उद्रेक' (मुकदमा) होता था। उस व्यवहार में वादी-प्रतिवादी के पक्षों को देखने के लिए राजा को ही अधिकारी माना गया है। जो दुर्जन हैं, दुर्व्रत है, आसक्तिपूर्ण दुष्टता पर उतारू है उनके लिए दंड के सिवाय अन्य कोई उपाय संभव नहीं है

'शुक्रनीति' में शुक्राचार्य ने लिखा है–

'दंडः पूज्य प्रहाणके ।'

'मनुस्मृति' के सप्तम् अध्याय में 'राजधर्म' के नाम से राजा, राज्य व दंड व्यवस्था का विस्तार से वर्णन है।

इसके अतिरिक्त दंड के महत्त्व को बताते हुए आगे लिखा है –

'दंडः शासित प्रजाः सर्वा दंड एवाऽभिरक्षति ।'

(दंड सारी प्रजा को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का उपदेश देता है। दंड ही सबकी रक्षा करता है)

'दंडः सुप्तेषु जाग्रति दंडं धर्मं विदुर् बुधाः ।'

(समझदार लोग दंडं को ही धर्म मानते है।)

'यदि न प्रणयेद् राजा दंडं दंड्येष्वतंद्रितः'।
'शूले मत्स्यानिवाअपक्ष्यन दुर्बलान बलवत् तराः ।।'

प्रागैतिहासिक काल से ही न्याय स्थापित करने के लिए दंड का विधान है। जिस समय मानव वृक्षों के द्वारा प्रदत्त फलों का उपभोग कर अपना जीवन यापन करता था और जब व्यवस्थित समाज का निर्माण नहीं हुआ था तब भी न्याय व्यवस्था थी।
जैन शास्त्रों में वर्णन आता है कि उस समय तीन प्रकार के 'दंड' देने की व्यवस्था थी - (1) हाकार (2) माकार (3) धिकार।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 48

धर्म कहता है कि न्याय के नाम पर किसी का विनाश करना उचित नहीं है। किसी को हानि पहुँचाना, दुःखी कर देना, पराधीन बना देना, असमर्थ बना देना और निंदनीय मान लेना नहीं है। यह घोर अन्याय माना जाता है। न्याय का अर्थ है अपराध की पुनः उत्पत्ति न हो क्योंकि न्याय युक्त जीवन से समाज में अपने प्रति न्याय करने की सद्भावना स्वतः जाग्रत होती है। सर्वोत्कृष्ट न्याय वही है जिससे व्यक्ति का जीवन समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो। न्याय व शांति की स्थापना न्याय कर्त्तव्य की प्रेरणा देता है तथा दूसरों को अधिकार सुरक्षित करता है।

अर्थात् यदि राजा जागरूक होकर अन्याय करने वाले अपराधीजनों को दंड नहीं देगा, तो बलवान व्यक्ति दुर्बलों को उसी प्रकार सताएंगे जैसे व्यक्ति मछलियों को अपनी रुचि के अनुसार पका कर खाते हैं।

भारतवर्ष में छह दर्शनों का जन्म हुआ उनमें न्याय दर्शन भी एक है। न्याय दर्शन के जन्मदाता गौतम ऋषि हैं। उन्होंने न्याय की परिभाषा देते हुए कहा है –

'प्रमाणैः अर्थपरीक्षणं न्यायः'

अर्थात् प्रमाणों के द्वारा अर्थ का परीक्षण करना तथा निर्णय करना ही न्याय है। वस्तुओं के मध्य समानताओं व विषमताओं का विवेचन ही न्याय प्रमाण शास्त्र है। न्याय के 16 तत्त्वों में पहला तत्त्व प्रमाण है ।

न्याय-विद्या पदार्थ को सत्यासत्य रूप को बतलाने वाली कहा गया है । प्रत्यक्षादि प्रमाणों के सत्यासत्य का परीक्षण करना ही न्याय कहलाता है–

'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः।'

'पक्षपातरहित-आचरणं न्यायः।'

न्याय जगत में प्रमाण के चार प्रकार हैं–

1 प्रत्यक्ष–इसमें किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती। यह न्याय का आधार या शुद्ध ज्ञान है ।

2. अनुमान– अनुमान से किसी अदृश्य पदार्थ का सत्य ज्ञान किया जाता है।

3. उपमान– पहले से अनुभूत किसी पदार्थ की समानता की अनुभूतता द्वारा सत्य का ज्ञान करना।

4. शब्द– आप्तों द्वारा लिखित ग्रंथ आदि, वर्तमान काल में लिखित संविधान, न्याय पुस्तिका, कानूनी पुस्तकें व विभिन्न फैसले आदि।

इस प्रकार उपर्युक्त प्राचीन तथ्यों को ध्यान में रखकर ही न्याय-प्रक्रिया का अध्ययन करना आवश्यक है, क्योंकि न्याय का पालन व्यवहार को सुंदर व सुविधाजनक बनाता है।

धर्म कहता है कि न्याय के नाम पर किसी का विनाश करना उचित नहीं है। किसी को हानि पहुँचाना, दुःखी कर देना, पराधीन बना देना, असमर्थ बना देना और निंदनीय मान लेना नहीं है। यह घोर अन्याय माना जाता है। न्याय का अर्थ है अपराध की पुनः उत्पत्ति न हो क्योंकि न्याय युक्त जीवन से समाज में अपने प्रति न्याय करने की सद्भावना स्वतः जाग्रत होती है । सर्वोत्कृष्ट न्याय वही है जिससे व्यक्ति का जीवन समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो। न्याय व शांति की स्थापना न्याय कर्त्तव्य की प्रेरणा देता है तथा दूसरों का अधिकार सुरक्षित करता है। निर्णय ऐसा हो जो सभी के हित का हो सही वास्तविक न्याय है। यह निर्विवाद सत्य है कि जो मानव अपने अधिकार की माँग त्याग कर कर्तव्य को महत्त्व देता है, कर्तव्य का पालन करता है वह न्याय को सत्य प्रेम में समाहित कर सर्वोत्कृष्ट उदेद्श्य को प्राप्त करने में सफल होता है।

अन्याय के त्याग के बिना जीवन में न्याय का

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 49

अनुसरण संभव नहीं है। किसी भी शासन प्रणाली को अपनाने वाला राष्ट्र क्यों न हो जब तक वहाँ का मानव समाज अपने लिए न्यायप्रियता को नहीं अपनाएगा, तब तक निर्दोषता की अभिव्यक्ति नहीं होती।

अपनों द्वारा की हुई भूल मिटाने के लिए अपनों को दंडित करना ही न्याय है। किसी की निर्बलता को अपना बल बनाना अन्याय है।

स्वतंत्र भारत व स्थिति

भारत में वर्तमान दंड-संहिता सन्1860 के आधार पर बनी हुई है, जो भारतीय संविधान की आधारभूत वास्तविकता के अनुरूप नहीं है। यह अपराधिक कानून संबंधी दंड की कठोरता में विश्वास रखना है। कुछ न्यायाधीश भारतीय दंड-संहिता या भारतीय दंड प्रक्रिया नियमों को कठोरता से लागू करते हैं, जिससे समाज में गंभीर भय की स्थिति पैदा होती है हमारे संविधान निर्माता किस प्रकार का समाज बनाना चाहते थे इस बात का संज्ञान न्यायाधीश को रखना चाहिए। उसे प्यार, सहानुभूति व भ्रातृत्व के भाव की अनुभूति तथा करुणा का भी ध्यान रखना चाहिए।

राज्य का भी दायित्व है कि वह अपने नागरिकों के जीवन व संपत्ति की रक्षा करे और ऐसा उपाय करे ताकि अपराध प्रवृत्ति से व्यक्ति को बचाया जा सके। राज्य को सबको समानता व बराबरी के अधिकार देने चाहिए। कुपोषण, बेरोजगारी, आवास समस्या, जो अपराध को बढ़वा देते है, राज्य को चाहिए कि इन समस्याओं का

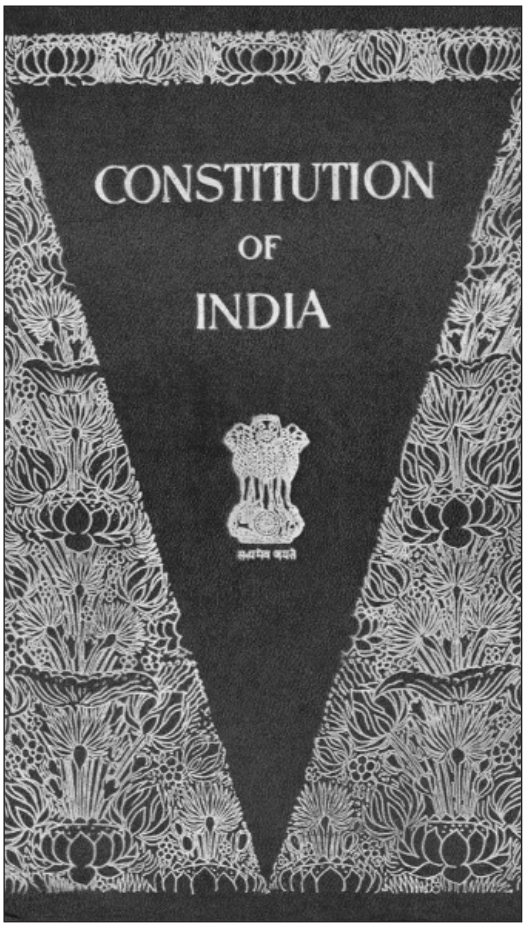

समाधान करे।

समय की मांग है कि एक अपराधी को एक मानव मानकर उसके अनुरूप व्यवहार को समझते हुए उसे विरासत में मिले मनुष्य के कुछ आधारभूत अधिकारों को नहीं भूलना चाहिए। अतः न्यायाधीश का अपराधी

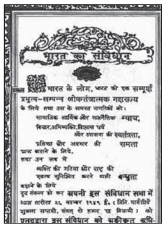

राज्य का भी दायित्व है कि वह अपने नागरिकों के जीवन व संपत्ति की रक्षा करे और ऐसा उपाय करे ताकि अपराध प्रवृति से व्यक्ति को बचाया जा सके। राज्य को सबको समानता व बराबरी के अधिकार देने चाहिए। कुपोषण, बेरोजगारी, आवास समस्या, जो अपराध को बढ़वा देते है राज्य को चाहिए कि इन समस्याओं का समाधान करे।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 50

के प्रति आध्यात्मिक व्यवहार भी होना चाहिए।

कहा भी गया है कि हर संत का अतीत व हर पापी का भविष्य होता है।

मानव स्वभाव के अनुसार कोई भी दोषमुक्त नहीं है। दोषों से सारा वातावरण दूषित है। समाज में मूल्यह्रास व जकड़न सर्वत्र व्याप्त है ।

ईसाई धर्म के 'न्यू टेस्टामेंट'(बाइबिल) का एक दृष्टांत है कि एक व्यभिचारिणी औरत को उसे दंड देने के लिए ईसा के समक्ष प्रस्तुत किया गया और उस महिला को पत्थरों से मारकर दंड देने के लिए निवेदन किया गया। इस पर ईसा मसीह ने कहा कि ठीक है इसे दंड अवश्य मिलेगा, लेकिन पहला पत्थर वह मारे जिसने आज तक कोई भी व्यभिचार न किया हो। यह सुनकर भीड़ तितर-बितर हो गई। पत्थर मारने वाला वहाँ कोई भी नहीं रुक सका।

न्याय मात्र कानूनी, तार्किक या बौद्धिक कार्य नहीं है परंतु अपराधी को विश्व परिवार का सदस्य मानते हुए उसके कल्याण के लिए पवित्र रूप से व्याख्यायित करना चाहिए। क्योंकि मानव मात्र हड्डी-माँस का पुतला नहीं है। इसके भीतर एक आत्मा भी है। हम सब एक पिता के पुत्र हैं।

हमें अपराधी को नकारात्मक विचार व आपराधिक

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 51

हमें अपराधी को नकारात्मक विचार व आपराधिक प्रवृतियों से मुक्त करना चाहिए। उसके भविष्य को उच्च व अच्छा बनाने का भाव रहना चाहिए इसलिए न्याय का आधार आध्यात्मिक होना परम आवश्यक है। आध्यात्मिक व्यवस्था व न्याय विज्ञान आपस में मिलते-जुलते हैं। हमारा संविधान भी आध्यात्मिक धारणाओं की तरह प्यार, सहानुभूति, भ्रातृत्व व अनुकंपा पर जोर देता है। अध्यात्म व न्याय विज्ञान व्यक्ति को अपराधों से बचाने के उपायों के बारे में सोचते हैं। न्याय व धर्म आपस में बहुत गहरे अंतर्निहित हैं, अतः अध्यात्म व न्याय प्रक्रिया को साथ-साथ आगे बढ़ना चाहिए।

प्रवृत्तियों से मुक्त करना चाहिए। उसके भविष्य को उच्च व अच्छा बनाने का भाव रहना चाहिए इसलिए न्याय का आधार आध्यात्मिक होना परम आवश्यक है। आध्यात्मिक व्यवस्था व न्याय विज्ञान आपस में मिलते-जुलते हैं। हमारा संविधान भी आध्यात्मिक धारणाओं की तरह प्यार, सहानुभूति, भ्रातृत्व व अनुकंपा पर जोर देता है। अध्यात्म व न्याय विज्ञान व्यक्ति को अपराधों से बचाने के उपायों के बारे में सोचते हैं। न्याय व धर्म आपस में बहुत गहरे अंतर्निहित हैं, अतः अध्यात्म व न्याय प्रक्रिया को साथ-साथ आगे बढ़ना चाहिए।

1967 के गोकुलनाथ तथा 1973 के 'केशवानंद अभियोग' की सुनवाई करते समय उच्चतम न्यायालय ने मानव अधिकारों की स्वतंत्रता के पक्ष में फैसला दिया। जो अध्यात्म पक्ष की बहुत बड़ी देन थी। उच्च व उच्चतम न्यायालय को प्रशासन के दुष्प्रभाव को रोकना चाहिए। संस्थानों की कार्य प्रणाली में जो विकृति आई हैं उसे रोकना चाहिए। इन सब तथ्यों को स्पष्ट करते हुए 'डॉ जाकिर हुसैन' स्मृति व्याख्यान माला में अपना भाषण देते हुए सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश महामान्य ए. एम. अहमदी ने कहा था – 'राष्ट्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, अपराधीकरण, संप्रदायवाद व जातिवाद ने ईमानदारी, सहनशीलता, अहिंसा, सहअस्तित्व, प्यार, मानवीयता, उचित प्रज्ञा व विशालता को समाप्त कर दिया है। जिससे देश में एक गंभीर समस्या पैदा हो गई है और हमारे राष्ट्र की एकता, एकात्मता को गंभीर खतरा पैदा हो गया है। सभ्य समाज वही है जहाँ कानून का राज्य है, सभ्य समाज में ही कानून का न्याय रह सकता है। वहाँ नहीं रह सकता है जहाँ व्यक्ति कानून को घेरना चाहता है, कानून को तोड़ना चाहता है और अपने आपको कानून से ऊपर समझता है।'

भारतीय संविधान की धारा 21 में प्रावधान है कि हम शांत जीवन जीने के अधिकारी हैं। इस प्रावधान के लिए यह सुविधा दी गई है कि हम कैसे रात्रि को चैन की नींद सो सकें। इससे हमें केवल भौतिक जीवन की सुरक्षा ही नहीं मिली बल्कि हमें मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक पर्यावरण के प्रदूषण मुक्त होने का अधिकार भी मिला है।

अतः वास्तविक न्याय की प्राप्ति हेतु धर्म के मार्ग का अनुसरण कर स्वयं की आत्मा की खोज अनिवार्य है और स्वयं की अनुभूति की आवश्यकता है। ऐसा उपलब्ध होने के बाद मानव को असली स्वतंत्रता की प्राप्ति होगी यही धर्म व न्याय का लक्ष्य है।

'धर्मो रक्षति रक्षितः धर्म एवं हतो हन्ति'

अर्थात् धर्म व न्याय की रक्षा करने वाले की न्याय रक्षा करता है तथा जो न्याय को समाप्त करता है न्याय उसको ही मारता है।

लेखक जैन दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान हैं ।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 52

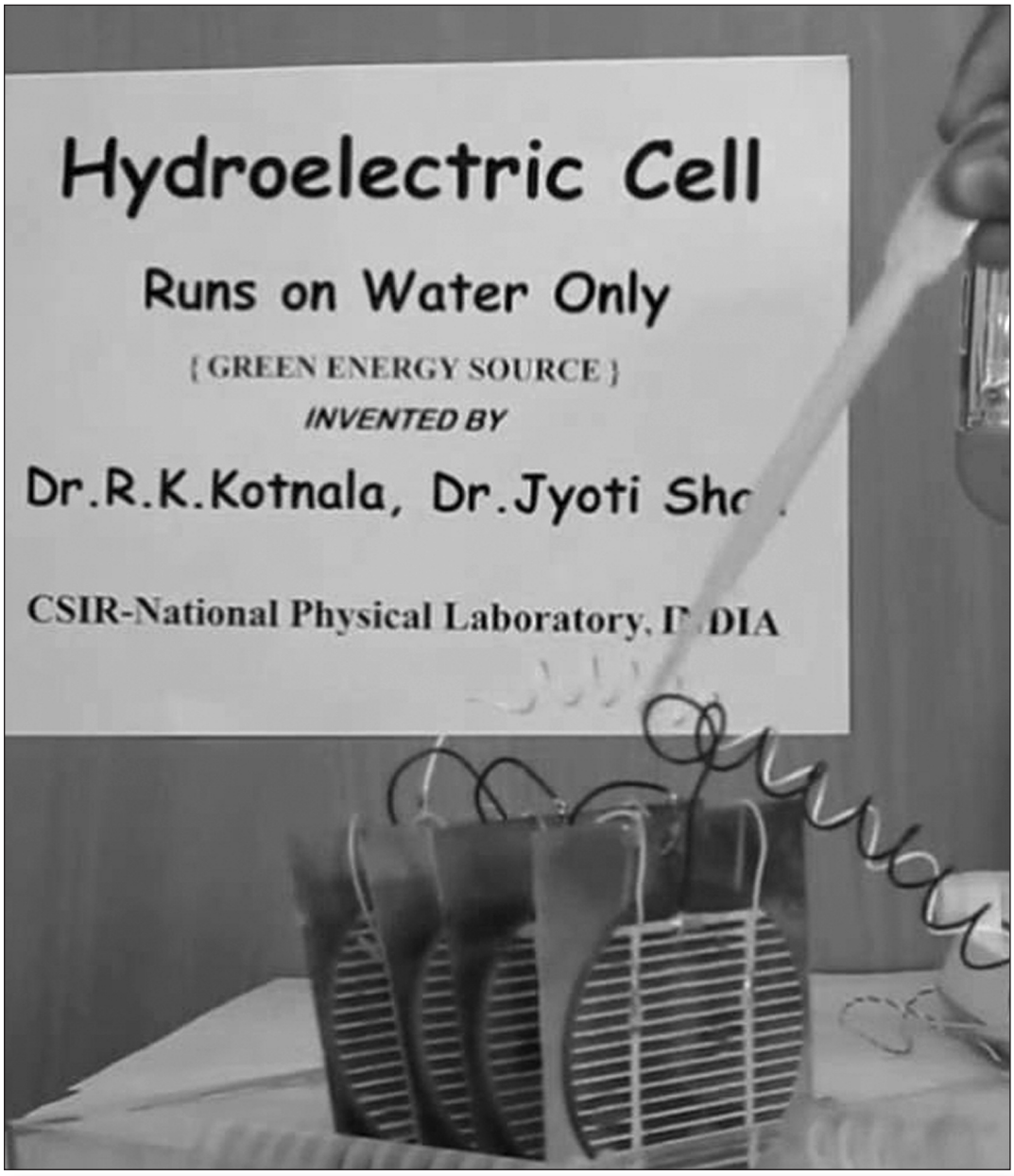

मानव जीवन में ऊर्जा का अत्यधिक महत्त्व है। इस सृष्टि के निर्माण में भी ऊर्जा की महत्ती भूमिका है। किसी देश के आर्थिक व भौतिक विकास की आधारशिला है ऊर्जा। इधर परंपरागत ऊर्जा के साधनों की सीमित उपलब्धि से विश्व चिंतित है। वैज्ञानिक नए विकल्प खोज रहे हैं। एक भारतीय वैज्ञानिक डॉ. रवींद्र कोटनाला ने पानी के अणु को आयनित कर बिजली बनाने में सफलता प्राप्त की है। इस प्रक्रिया को उन्होंने हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल का नाम दिया है।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 53

गरिमा कोटनाला

भारतीय वैज्ञानिक का अनूठा आविष्कार

हरित ऊर्जा : पानी से बिजली बनाने वाला सेल

ऊर्जा किसी भी देश के आर्थिक व सामाजिक विकास की कुंजी है । पानी के अणु को तोड़कर बिजली बनाने की कल्पना में एक भारतीय ने बाजी मारी है । अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भारतीय वैज्ञानिक डॉ. रवींद्र कुमार कोटनाला ने कम पानी से चलने वाले सेल और उसके द्वारा बिजली बनाने का तरीका आविष्कार किया है, जिसे हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल नाम दिया गया है । उनके इस आविष्कार को अमेरिका तथा भारत में पेटेंट के लिए अनुमोदित किया जा चुका है । 'मेक इन इंडिया' की राह पर चलकर अब देश न सिर्फ उन्नति कर रहा है, बल्कि दुनिया को भी चौंका रहा है।

सी. एस. आई. आर. की राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला के प्रमुख वैज्ञानिक डॉ. कोटनाला ने अपनी शोध-सहयोगी डॉ. ज्योति शाह के साथ मिलकर यह उपलब्धि प्राप्त की है । प्रयोगशाला में बने इन सेलों को टॉर्च, लैंप, लालटेन में कहीं भी लगाया जा सकता है । इसमें ईंधन की जगह पानी भरो और बिजली तैयार । पानी से चलने वाले इन सेलों में कुछ भी पर्यावरण के लिए नुकसानदायक नहीं है। यह सेल हरित ऊर्जा के क्षेत्र में अनूठा आविष्कार है।

प्रयोगशाला में 13 साल के अथक परिश्रम के बाद ऐसा जल विद्युत सेल तैयार किया गया है, जिसमें लिथियम प्रतिस्थापित मैग्नीशियम फेराइट का इस्तेमाल किया जाता है। यह भारतवर्ष में बहुत मात्रा में उपलब्ध है। इस पदार्थ द्वारा पानी के अणु आयनित हो जाते हैं। इन अयानों को दो भिन्न इलेक्ट्रॉड पर एकत्रित किया जाता है। अयानों के प्रवाह से बिजली प्राप्त होती है । अभी एक इंच सेल की कीमत का अनुमान 17 रुपए लगाया गया है । फिलहाल डॉ. कोटनाला इस

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 54

विधि को फूलप्रूफ बनाना चाहते हैं और उसके बाद बाजार में लाने के बारे में विचार किया जाएगा । संभवतः यह हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल, सोलर सेल तथा फ्यूल सेल का एक अच्छा विकल्प उभर कर आएगा।

यह अनुमान है कि भारत में करीब 24 करोड़ लोग अभी भी बिजली से वंचित हैं। भौगोलिक दृष्टि से कठिन ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ऊर्जा की आपूर्ति एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। ऊर्जा ट्रांसमिशन के खर्च की दृष्टि से हम ग्रामीण क्षेत्रों के भीतर ही ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए नए तरीकों के अनुसंधान करने की आवश्यकता है। इस दिशा में पानी से चलने वाला यह हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल एक बेहतर विकल्प हो सकता है, जो कि ग्रामीण भारत के लिए ऊर्जा सुरक्षा, अर्थव्यवस्था के विकास और बुनियादी सुविधाओं के आधुनिक भारत को प्राप्त करने मे मदद करेगा । समाज के सतत विकास के लिए सुरक्षित ऊर्जा सेवाएँ बुनियादी मानवीय जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक हैं।

अनुसंधान एवं विकसित नए विकल्प हरित/अक्षय ऊर्जा स्रोतों के विकास से हम कार्बन उत्सर्जित करने

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 55

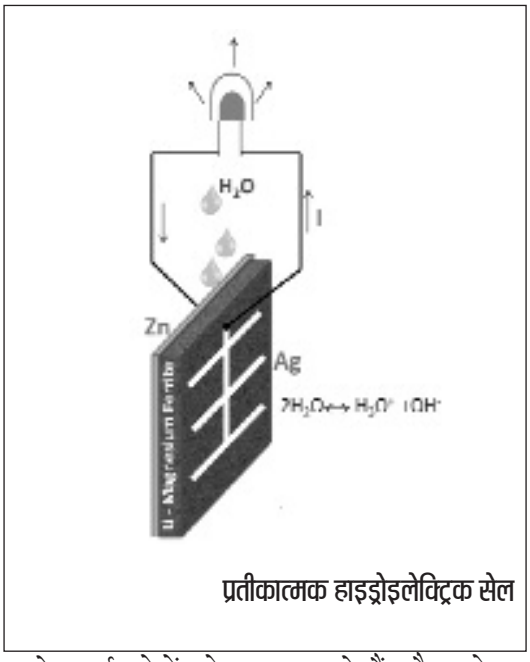

प्रतीकात्मक हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल

दो इंच वर्गाकार के 60 हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल

वाले ऊर्जा स्रोतों को बदल सकते हैं और ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्या को काफी कम कर सकते हैं ।

भारत की बिजली उत्पादन क्षमता 290 गीगावाट (GW) है, जिसमें सबसे बड़ा हिस्सा कोयला के द्वारा (60%) बिजली बनाई जाती है।. इसके बाद पनबिजली द्वारा (15%) और प्राकृतिक गैस द्वारा (8%) है। सन् 2000 के बाद अक्षय ऊर्जा संसाधनों के विकास के कारण विविध मिश्रित ऊर्जा का योगदान बढ़ा है। बिजली के क्षेत्र में निर्णय लिया गया है कि अक्षय ऊर्जा उत्पादन को 2022 तक बढ़ा कर 175 गीगावाट तक किया जाए, जो अभी 34.35 गीगावॉट है जिसमे एक अच्छी तरह से प्रबंधित संसाधन, मानचित्रण और क्षमता निर्माण की आवश्यकता है। जनसंख्या वृद्धि के बावजूद, भारत संरचनात्मक ऊर्जा की कमी का सामना कर रहा है। इस दिशा में हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

भारत में ऊर्जा की दुविधा का हल न केवल औसत टैरिफ बढ़ाने से और अधिक क्षमता जोड़ने से होगा, बल्कि अक्षमताओं और ऊर्जा का उपयोग करने की बाधाओं से निपटने से होगा । नए हरित ऊर्जा स्रोतों को विकसित करने के साथ-साथ, संरक्षण और ऊर्जा बचाना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। यह स्थिति हमे प्रेरित करती है कि हम एक संस्थान की संरचना बारे में सोचें, जो अनुसंधान और नई ऊर्जा प्रौद्योगिकियों के विकास के साथ ऊर्जा की बचत के नए तरीकों की पहचान करे और ऊर्जा की कुशल खपत के लिए उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम भी चलाए । नवनिर्मित हरित ऊर्जा संस्थान में हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल पर बड़े पैमाने में अनुसंधान किया जा सकता है ।

ऊर्जा के क्षेत्र में अद्भुत आविष्कार-हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल पर्यावण में कोई प्रदूषण नहीं करता है। इसको गांवों तक भेजने के लिए विकसित करना है। अतः ऊर्जा के नए विकल्पों पर रिसर्च करने के लिए एक नए संस्थान की आवश्यकता है, जिसके लिए भारत सरकार को एकदम कदम उठाना चाहिए ।

●

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 56

भारत में तुलसी पवित्र और पूज्य मानी जाती है। पौराणिक महत्त्व से अलग तुलसी एक जानी-मानी औषधि भी है, जिसका प्रयोग कई बीमारियों में किया जाता है। तुलसी को लक्ष्मी का ही स्वरूप माना गया है। विधि-विधान से इसकी पूजा करने से महालक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और इनकी कृपा स्वरूप हमारे घर पर कभी धन की कमी नहीं होती है। प्रस्तुत है तुलसी के औषधीय व धार्मिक महत्त्व के संबंध में जाने-माने वनस्पति वैज्ञानिक डॉ. एस. के. उपाध्याय का विशेष लेख।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 57

डॉ. एस. के. उपाध्याय

तुलसी का औषधीय व धार्मिक महत्त्व

अधिकांश हिंदू परिवारों में तुलसी की पूजा की जाती है, इसे सुख और कल्याण प्रदान करने वाली माना जाता है। लेकिन पौराणिक महत्त्व से अलग तुलसी एक जानी-मानी औषधि भी है, जिसका प्रयोग कई बीमारियों में किया जाता है। सर्दी खाँसी से लेकर कई बड़ी और भयंकर बीमारियों में भी यह एक कारगर औषधि है।

आयुर्वेद में तुलसी के पौधे के हर भाग को स्वास्थ्यकारी बताया गया है। तुलसी की जड़ उसकी शाखाएँ, पत्ती और बीज सभी का अपना-अपना महत्त्व है। आमतौर पर घरों में दो तरह की तुलसी देखने को मिलती है– एक जिसकी पत्तियों का रंग थोड़ा गहरा और लालिमा लिए होता है। इसे *श्यामा तुलसी* कहते हैं और दूसरा जिसकी पत्तियों का रंग हल्का हरा होता है, इसे *राम तुलसी* कहते हैं।

स्त्री-पुरुषों के प्रजनन रोगों की दवाइयाँ बनाने में तुलसी खास तौर पर प्रयोग की जाती है, जो वैसे प्रचलित नहीं है, किंतु इसका प्रभाव चमत्कारी होता है। तुलसी के कुछ अनदेखे लाभ इस प्रकार हैं –

- ***पुरुषों की शारीरिक कमजोरी में -***

पुरुषों में शारीरिक कमजोरी होने पर तुलसी के बीज का प्रयोग लाभकारी होता है। इसके अलावा यौन दुर्बलता और नपुंसकता में भी इसके एक चुटकी बीज पीसकर प्रतिदिन शहद के साथ प्रयोग करें।

- ***अनियमित मासिक की समस्या में -***

तुलसी के बीज व पत्ते प्रतिदिन शहद के साथ सेवन करने से मासिक धर्म की समस्याएँ दूर होती हैं।

- ***सर्दी में विशेष उपयोग -***

सर्दी या फिर हल्का बुखार है तो मिश्री, काली मिर्च और तुलसी के पत्तों को पानी में अच्छी तरह से पकाकर उसका काढ़ा पीने से लाभ होता है। आप चाहें तो इसकी

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 58

गोलियाँ बनाकर भी खा सकते हैं।

काली मिर्च और तुलसी को बराबर मात्रा में पीसकर गेहूँ के बराबर बनाई गई गोलियाँ सर्दी में अपना चमत्कारी प्रभाव दिखाती हैं।

• *पुराने दस्त होने पर -*

तुलसी के पत्तो को जीरे के साथ मिलाकर पीस लें, इसके बाद उसे दिन में 3-4 बार चाटते रहें। ऐसा करने से पुराने से पुराने दस्त रुक जाते हैं।

• *साँस की दुर्गंध दूर करने के लिए -*

अगर आपके मुख से बदबू आ रही हो, तो तुलसी के कुछ पत्तों को चबा लिया करें। ऐसा करने से दुर्गंध चली जाती है एवं दंत विकार दूर होते हैं।

• *चोट लग जाने पर -*

तुलसी के पत्तों को फिटकरी के साथ मिलाकर लगाने से खून का निकलना बंद हो जाता है और प्रतिदिन लगाने पर घाव जल्दी ठीक हो जाता है। तुलसी में एंटी-बैक्टीरियल तत्त्व होते हैं, जो घाव को पकने नहीं देते हैं। इसके अलावा तुलसी के पत्ते को तेल में मिलाकर लगाने से जलन भी कम होती है।

• *चेहरे की चमक के लिए -*

त्वचा संबंधित रोगों में तुलसी खासकर फायदेमंद है। इसके इस्तेमाल से कील-मुहाँसे खत्म हो जाते हैं और चेहरा साफ होता है।

• *कैंसर के इलाज में -*

कई आधुनिक शोधों में तुलसी के बीज को कैंसर के इलाज में भी कारगर बताया गया है। इसमें भरपूर मात्रा में एंटी ऑक्सीडेंट होने के कारण ब्रेस्ट कैंसर और ओरल (मुख के)कैंसर से बचने के लिए तुलसी खाना फायदेमंद है।

• *गुर्दे की पथरी में उपयोग*

किडनी स्टोन (पथरी) को खत्म करने के साथ-साथ तुलसी त्वचा को साफ करने में भी मददगार है।

• *मलेरिया व अन्य बुखार में लाभकारी -*

बुखार में तुलसी बहुत फायदेमंद होती है। यह एंटीबैक्टीरियल और एंटीबायोटिक होती है। मलेरिया के दौरान होने वाले बुखार को दूर करने में तुलसी बहुत फायदेमंद है। आयुर्वेद में बुखार से पीड़ित व्यक्ति को तुलसी की पत्तियाँ खाने की सलाह दी जाती है।

• *मधुमेह से भी बचाती है तुलसी -*

तुलसी से इंसुलिन की संवेदनशीलता को बढ़ाया जा सकता है, अगर बल्ड शुगर कम है तो इसका इलाज तुलसी से किया जा सकता है।

• *दिल संबंधित समस्याओं से छुटकारा -*

औषधीय गुणों से भरपूर तुलसी दिल संबंधित समस्याओं को भी दूर करती है। इससे ना सिर्फ कॉलेस्ट्रॉल को नियंत्रित किया जा सकता है बल्कि यह रक्तचाप को नियंत्रित करने की क्षमता रखती है, रोजाना खाली पेट तुलसी की कुछ पत्तियाँ चबाने से दिल की बीमारियों से बचा जा सकता है।

• *तनाव दूर करने के लिए -*

केंद्रीय औषधीय अनुसंधान संस्थान के एक शोध के अनुसार तुलसी से स्ट्रेस हार्मोन को सामान्य किया जा सकता है, रक्त के प्रवाह को सामान्य करने में भी तुलसी बहुत मददगार है, जो लोग बहुत तनाव में रहते है, उन्हें दिन में दो बार तुलसी की12 पत्तियाँ चबानी चाहिएं।

इजराइल ने तुलसी के कई पेटेंट तनाव दूर करने के लिए।

• *बालों और त्वचा के लिए -*

तुलसी में पाए जाने वाले तत्त्वों से त्वचा सुरक्षित रहती है, इतना ही नहीं मुहाँसे दूर करने में भी तुलसी फायदेमंद है।

बालों से खुजली या रूसी मिटाना हो या झड़ते बालों को रोकना हो तुलसी दोनों में फायदेमंद है। इसके

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 59

लिए नारियल के तेल में तुलसी मिलाकर लगाने से बालों की खुजली मिटती है और बाल नहीं झड़ते हैं।

• *सिरदर्द के लिए -*

एलर्जी, साइनस, जुकाम और सिरदर्द जैसी समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए तुलसी का सेवन करना चाहिए। तुलसी की पत्तियों को पीसकर पानी में मिलाकर गर्म करें और सामान्य तापमान पर आने पर तोलिए पर यह पानी रखकर सिर में लगाएँ चुटकियों में सिरदर्द भाग जाएगा।

तुलसी का धार्मिक महत्त्व

तुलसी के पौधा का हमारे लिए बहुत ही धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व है, जिस घर में इसका वास होता है, वहाँ आध्यात्मिक उन्नति के साथ सुख-शांति एवं आर्थिक समृद्धि स्वयं आ जाती है।

तुलसी को देवता मानने, मंदिर एवं घरों मे उसे लगाने, पूजा करने के पीछे यही कारण है कि यह सर्वदोष निवारक पौधा है। भारतीय पूजा अर्चना के अवसर पर तुलसी दल ग्रहण करते हैं तथा तुलसी काष्ठ की माला भी पहनते हैं। तुलसी गुणों की खान है, इस कारण अथर्वेद में इसे महाऔषधि की संज्ञा दी गई है।

इसे संस्कृत में हरिप्रिया कहते हैं। इस औषधि की उत्पति से भगवान विष्णु के मन का संताप दूर हुआ था। ऐसा विश्वास है कि तुलसी की जड़ में सभी तीर्थ, मध्य में देवी-देवता और ऊपर की शाखा में वेद स्थित है। तुलसी का प्रतिदिन दर्शन करना पापनाशक तथा पूजा करना मोक्षदायक माना गया है। तुलसी पत्र से पूजा

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 60

करने से व्रत, यज्ञ, जप, होम और हवन करने का पुण्य प्राप्त होता है। तुलसी मोक्षदायनी भी है।

प्रचलित धार्मिक कथा के अनुसार–

रामायुध अंकित गृह शोभा बरनी न जाई।
नव तुलसिका वृंद तहंदेखि हरषि कपिराई ।।

'पद्म पुराण' में लिखा है कि जहाँ तुलसी का एक भी पौधा होता है वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश निवास करते हैं। तुलसी की सेवा करने से महापातक भी उसी प्रकार नष्ट हो जाते है, जैसे सूर्य के उदय होने से अंधकार नष्ट हो जाता है। कहते हैं कि जिस प्रसाद में तुलसी नहीं होती उसे भगवान भी स्वीकार नही करते। भगवान विष्णु, योगेश्वर कृष्ण और पांडुरंग (बालाजी) के पूजन के समय तुलसी पत्रों का हार उनकी प्रतिमाओं की अर्पण किया जाता है। तुलसी-वंदना श्री कृष्ण भगवान की प्रिय मानी जाती है और इसका भोग लगाकर भगवत प्रेमीजन इसको प्रसाद रूप में ग्रहण करते हैं। स्वर्ण, रतन, मोती से बने पुष्प यदि श्रीकृष्ण जी को चढ़ाए जाएँ तो भी तुलसी पत्र के बिना ये अधूरे हैं। श्रीकृष्ण अथवा विष्णु जी तुलसी पत्र से प्रोक्षण किए बिना नैवेद्य स्वीकार नहीं करते हैं।

तुलसी पौधे की पूजा विशेष कर स्त्रियाँ करती हैं। सद्गृहस्थ महिलाएँ सौभाग्य, वंश समृद्धि हेतु तुलसी-पौधे को जल-सिंचन, रोली-अक्षत से पूजकर दीप जलाती हुई अर्चना-प्रार्थना में कहती हैं–

सौभाग्यं संततिं देहि, धनं धान्यं व सर्वदा।

वैसे वर्ष भर तुलसी के थांवले का पूजन होता है, परंतु विशेष रूप से कार्तिक मास में इसे पूजते हैं। कार्तिक मास में विष्णु भगवान का तुलसी दल से पूजन करने का माहाम्य अवर्णनीय है।

तुलसी पूजा : विष्णु पुराण के अनुसार कार्तिक नवमी तथा सुदी एकादशी को तुलसी विवाह का उल्लेख है, किंतु अन्य धर्म ग्रंथों में प्रबोधिनी एकादशी का दिन शुभ एवं फलदायी बताया गया है। इसी दिन गोधूली वेला मे भगवान् शालिग्राम, तुलसी व शंख का पूजन करने से विशेष पुण्य की प्राप्ति होती है। इस दिन तुलसी एवं भगवान् शालिग्राम का विवाह कर पूजा अर्चना की जाती है। यह दिन अत्यंत शुभ माना जाता है और मान्यता है कि इस दिन योगेश्वर भगवान् विष्णु अपनी योगनिद्रा से जागते हैं और उसके बाद से सभी शुभ कार्य प्रारंभ किए जाते हैं।

तुलसी विवाह : ऐसी मान्यता है कि तुलसी विवाह से कन्यादान के बराबर पुण्य मिलता है, साथ ही धर में श्री, संपदा, वैभव-मंगल विराजते हैं। तुलसी की आराधना के साथ ग्रंथ लेखन कार्य प्रारंभ किया जाता है।

महाप्रसादजननी सर्वसौभाग्यवर्धिनी ।
आधिव्याधिहरिर्नित्यं तुलसि त्वं नमोस्तुते ।।

हे तुलसी! आप संपूर्ण सौभाग्यों को बढ़ाने वाली हैं, सदा आधि-व्याधि को मिटाती हैं, आपको नमस्कार है।

''अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्''।।

तुलसी को अकाल मृत्यु का हरण करने वाली और समस्त रोगों को दूर करने वाली माना गया है।

रोपनात् पालनान् सेकान्
दर्शनात्स्पर्शनात् रक्षणात्।
तुलसी दहति पापं वाङ्मनः कायसञ्चितम् ।।

तुलसी को लगाने से, पालने से, सींचने से, दर्शन करने से, स्पर्श करने से, मनुष्यों के मन, वचन और काया से संचित पाप जल जाते हैं।

वायु पुराण में तुलसी पत्र तोड़ने के कुछ नियम व मर्यादाएं बताते हुए लिखा है–

अस्त्रात् तुलसीं छित्वा यः
पूजां कुरूते नरः ।
सोऽपराधी भवेत् सत्यं
तत् सर्वं निश्फलं भवेत् ।।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 61

अर्थात बिना स्नान किए तुलसी को तोड़कर जो मनुष्य पूजा करता है, वह अपराधी है। उसकी की हुई पूजा निष्फल जाती है, इसमें कोई संशय नहीं। तुलसी की पूजा से घर में सुख-समृद्धि और धन की कोई कमी नही होती है। इसके पीछे धार्मिक कारण है।

तुलसी में हमारे सभी पापों का नाश करने की शक्ति होती है। तुलसी को लक्ष्मी का ही स्वरूप माना गया है। विधि-विधान से इसकी पूजा करने से महालक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और इनकी कृपा स्वरूप हमारे घर पर कभी धन की कमी नहीं होती है।

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को तुलसी विवाह का उत्सव मनाया जाता है । इस एकादशी पर तुलसी विवाह का विधिवत पूजन करने से भक्तों की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

तुलसी पूजन की सामान्य सामग्री : तुलसी पूजा के लिए गन्ना (ईख), विवाह मंडप की सामग्री, सुहागन स्त्री की संपूर्ण सामग्री, घी, दीपक, धूप, सिंदूर, चंदन, नैवेद्य और पुष्प आदि। तुलसी पूजन का श्रेष्ठ मुहूर्त शाम 7:50 से 9:20 तक शुभ चोघड़िया में तुलसी पूजन करते हैं।

तुलसी विवाह के पूजन हेतु तुलसी पौधे के गमले को गेरू आदि से सजाएँ। गमले के चारों ओर गन्ने (ईख) का मंडप बनाएँ। अब गमले के ऊपर ओढ़नी या सुहाग की प्रतीक चुनरी ओढ़ाएँ। गमले को साड़ी में लपेटकर, तुलसी को चूड़ी पहनाकर उनका शृंगार करें। श्री गणेश सहित सभी देवी-देवताओं का तथा श्री शालिग्राम जी का विधिवत् पूजन करें। पूजन करते समय तुलसी मंत्र (तुलस्यै नमः) का जप करें। इसके बाद एक नारियल दक्षिणा के साथ टीका के रूप में रखें। भगवान श्री शालिग्राम जी की मूर्ति का सिंहासन हाथ में लेकर तुलसीजी की सात परिक्रमा कराएँ। आरती के पश्चात् विवाहोत्सव पूर्ण किया जाता है। विवाह में जो सभी रीति-रिवाज होते हैं उसी तरह तुलसी विवाह के सभी कार्य किए जाते है। विवाह से संबंधित मंगल गीत भी गाए जाते हैं।

तुलसीनामाष्टक का जप करें। अश्वमेध यज्ञ से प्राप्त पुण्य कई जन्मों तक फल देने वाला होता है। यही पुण्य तुलसी नामाष्टक के नियमित पाठ से मिलता है। तुलसी नामाष्टक का पाठ पूरे विधि-विधान से किया जाना चाहिए। तुलसी नामाष्टक-

वृंदा वृंदावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी ।
पुष्पसारा नंदनी च तुलसी कृष्णजीवनी ।।
एतामष्टकां चैव स्त्रोतं नामार्थसंयुतम ।
यः पठेत् तां च सम्पूज्य
सोऽवश्मेघफलमेताम् ।।

देवोत्थान एकादशी के दिन मनाया जाने वाला तुलसी विवाह विशुद्ध मांगलिक और आध्यात्मिक प्रसंग है। देवता जब जागते है, तो सबसे पहले पहली प्रार्थना हरिवल्लभ तुलसी की ही सुनते हैं। इसीलिए तुलसी विवाह को देव जागरण के पवित्र मुहूर्त के स्वागत का आयोजन माना जाता है। तुलसी विवाह का सीधा अर्थ है, तुलसी के माध्यम से भगवान का आह्वान। कार्तिक शुक्ल पक्ष एकादशी को तुलसी पूजन का उत्सव मनाया जाता है। वैसे तो तुलसी विवाह के लिए कार्तिक शुक्ल पक्ष नवमी की तिथि ठीक है, परंतु कुछ लोग एकादशी से पूर्णिमा तक तुलसी पूजा का पाँचवे दिन तुलसी विवाह करते हैं। आयोजन, बिल्कुल वैसा ही होता है, जैसे हिंदू रीति-रिवाज से सामान्य वर-वधु का विवाह किया जाता है।

लेखक केंद्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के पूर्व सदस्य एवं प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी हैं।

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 62

मनोगत

मान्यवर महोदय,

आपको विजय दशमी और दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएँ। विजयपर्व एवं ज्योतिपर्व आपके और आपके परिवार के लिए मंगलमयी हो। इस शुभ अवसर पर 'मंगल विमर्श' का अक्तूबर 2017 का अंक आपके हाथें में सौंपते हुए आनंद की अनुभूति हो रही है। हमारे लिए यह संतोष की बात है कि पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विषय में आपकी प्रतिक्रियाएँ प्राप्त होती हैं। आपके पत्र हमारे लिए बहुत प्रेरक और मार्गदर्शक होते हैं। मंगल विमर्श के अप्रैल 2017 के अंक के संबंध में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा जी ने अपने पत्र में लिखा है कि यह अंक उच्च स्तरीय रचनाओं को अपने आंचल में समेटे हुए हैं। जीवन मूल्यों की बड़ी विशद् और गंभीर चर्चा करते हुए सुधी लेखक डॉ. बजरंग लाल गुप्ता ने एक वाक्य में हमारे सांस्कृतिक मूल्यों का सार निकाल कर रख दिया है, जब वह कहते हैं कि जीवन मूल्यों में हमने सबसे ज्यादा जोर आचार प्रधान जीवन दृष्टि एवं जीवन व्यवहार पर दिया है। हमारे मनीषियों ने कहा है '*आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः*' जो आचारहीन है उसको तो चारों वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। हम किसी बड़े सत्ताधारी राजा महाराजा के चरण नहीं पूजते, न किसी धनवान और लक्ष्मीपति के चरण धोते या चाटते हैं क्योंकि हमारे यहाँ 'चरण आचरण' पूज्य है। डॉ. गुप्ता ने इस महान आदर्श को एक वाक्य में व्यक्त कर दिया- साधुवाद है उनको।

इन सारे लेखों में सर्वाधिक शोधपरक तथा विचारोत्तेजक लेख 'हिंदू विद्वेषः निवेशन, निहितार्थ एवं निदान' है, जो ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दोनों दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। साम्यवाद की तो विद्वान लेखक आनंद आदीश जी ने बिल्कुल ही अंत्येष्टि कर दी है। सभ्यता के दस हजार के लंबे काल में 75 वर्ष कोई महत्त्व नहीं रखते। इतनी खोखली विचाारधाराएँ आज तक इतिहास में पैदा नहीं हुई। 75 वर्ष डंका बजाकर सारे विश्व को अपने आतंक की लपेट में लेने वाला कम्यूनिज्म विश्व

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 63

साम्यवाद जैसी खोखली विचारधाराएँ आज तक इतिहास में पैदा नहीं हुई। 75 वर्ष डंका बजाकर सारे विश्व को अपने आतंक की लपेट में लेने वाला कम्यूनिज्म विश्व पटल से ऐसे उड़ गया, जैसे गधे के सर से सींग। धर्म को अफीम बताकर धर्मविहीन समाज की रचना करने का स्वप्न देखने वाले तो नष्ट हो गए; परंतु अब उस अफीम की रूस में बड़ी तेजी से माँग बढ़ रही है। उसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि 1917 की क्रांति से पहले रूस में कोई हिंदू मंदिर नहीं था, आज कृष्ण भावना का एक मंदिर मास्को में बन गया है, एक लेनिनग्राद में बनने जा रहा है।

पटल से ऐसे उड़ गया, जैसे गधे के सर से सींग। धर्म को अफीम बताकर धर्मविहीन समाज की रचना का स्वप्न देखने वाले तो नष्ट हो गए; परंतु अब उस अफीम की रूस में बड़ी तेजी से माँग बढ़ रही है। उसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि 1917 की क्रांति से पहले रूस में कोई हिंदू मंदिर नहीं था, आज कृष्ण भावना (ISCON) का एक मंदिर मास्को में बन गया है, एक लेनिनग्राद में बनने जा रहा है। अब मार्क्स और लेनिन का नाम तो केवल राजनीति की किताबों के पन्नों तक ही सीमित रह जाएगा; परंतु बुद्ध, नानक, ईसा, राम, कृष्ण का नाम सदैव ही बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता रहेगा। भारतीय वामपंथी(कम्यूनिस्ट) अब सुरा-सुंदरी तक सीमित होकर रह गए हैं। अश्लीलता उनकी संस्कृति है और राष्ट्र की संस्कृति के मान बिंदुओं पर गंद उछालना उनका सिद्धांत बन गया है। यह अश्लीलता अधिक दिनों तक चलने वाली नहीं है। राष्ट्रद्रोह तथा संस्कारविहीन आचरण के कारण वामपंथी वाममार्ग की भाँति अपने पतन का मार्ग स्वयं प्रशस्त कर रहे हैं।

विद्वान लेखक ने चर्च आधारित षड्यंत्र की अच्छी पोल खोली है। ईसाईमत के सर्वोच्च धर्मगुरु पोप ने स्वयं स्वीकार किया है कि मैं इतिहास के सर्वाधिक पापी चर्च पर अध्यक्षता कर रहा हूँ। आज अधिकांश अमेरिका चर्च के खोखलेपन से निराश होकर कृष्णा कल्ट (ISCON) तथा योग से आकर्षित तथा आच्छादित हो रहा है। अमेरिका के बौद्ध केंद्र की अधिष्ठात्री कुमारी मैरी हारलोवे ने अपनी पुस्तक 'Christianity-The Greatest Misfortune' (ईसाइयत -सब से बड़ा दुर्भाग्य) में बहुत के उद्धरण देकर निष्कर्ष निकाला है कि 'शीघ्र ही समय आ रहा है जब दुनिया दो हजार वर्ष तक ईसाई होने पर पश्चाताप करेंगी' (The time is fast coming when the world will repent for their being christian for two thousand years) सारा लेख बड़ा सारगर्भित है, सराहनीय ही नहीं, प्रशंसनीय है जिसके लिए लेखक महोदय का अभिवादन है। अब तो केवल हिंदुओं का स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास जगाने की आवश्यकता है। गीता का उपदेश है 'क्लेव्यं मा स्म गम', पार्थ नपुंसकों की भांति मत सोच, गांडीव उठाकर प्रत्याघात कर - विजय भी तेरी प्रतीक्षा कर रही है। ऐसे गंभीर चिंतनपरक लेख पर आपको भी बधाई है।

चिंतक व लेखक श्री दामोदर शांडिल्य जी ने अपने पत्र में लिखा है कि 'मंगल विमर्श' के अप्रैल, 2017 अंक में डॉ. श्री नंद मेहता 'वगीश' जी का लेख 'शब्द, मन, और साहित्य' बहुत ही अच्छा लगा। ऐसा विवेचना बहुत कम दृष्टिगत होती है। स्वतंत्र भारत में हमारी ऐतिहासिक वैज्ञानिक विरासत का अभ्युदय होना चाहिए था। पर गत् 70 वर्ष में ह्रास ही हुआ है। नई पीढ़ी में न तो ललक है और न साधना।

कुछ बातें विचारणीरय लगीं। 'पश्यन्ति' शब्द की जगह दो बार 'पश्चन्ति' शब्द का उल्लेख लेख में हैं। शाायद मुद्रण की त्रुटि से हो गया होगा। सही शब्द

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 64

'पश्यन्ति' ही है। वाक्त्रयी में वैखरी, मध्यमा तथा पश्यन्ति का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। चौथी अवस्था– 'परावाक्' तो स्वयं परब्रह्म आप हैं। वैखरी में शब्द तथा अर्थ में भेद संबंध होता है। माध्यम में भेद तथा अभेद दोनों संबंध होते हैं। पश्यन्ति तो शब्द तथा अर्थ में अभेद संबंध की भूमि है। पश्यन्ति भूमि पर पहुँचा योगी परात्पर ब्रह्म के 'ज्योतिषाम् अपि ज्योतिः' आप के दर्शन करने की योग्यता पाता है। परावाक् भूमि तो स्वयं परब्रह्म रूप है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने वाक् अर्थ के आपसी संबंध के बारे में एक चौपाई में सुंदर वर्णन किया है और जल और लहरों का उदाहरण इस हेतु दिया है–

गिरा अर्थ जल वीचि सम, जानत भिन्न न भिन्न।
वन्देऊ सीताराम पद, जाहि परम प्रिय खिन्न।

जल और लहर का संबंध भिन्न भी है और अभिन्न भी। मध्यमा भूमि पर साहित्य रचना होती है यह बड़ा अनुभव पूर्ण कथन है क्योंकि मध्यमा वैखरी और पश्यन्ति की सेतु भूमि है। इसीलिए संसार में साहित्यकार को प्रजापति से तुलना की गई है। 'असारे खलु संसारे कविदे प्रजापति' ।

इसी प्रकार दृश्य और श्रव्य को मन की निर्मिति का कारण कहा गया है। मन तो स्वयं प्रकृति निर्मित है। परमब्रह्म तीन रूपों में जो सृष्टि में व्याप्त है उनमें एक मन है। मन, प्राण, वाक् इन तीन रूपों में आत्मतत्त्व व्याप्त है। जीव, ईश्वर तथा ब्रह्म में ये तीन ही हैं । जीव में प्राज्ञ तेजसं वैश्वानर रूप में ईश्वर तंत्र में सर्वज्ञ, हिरण्य गर्भ तथा विराट् रूप में तथा ब्रह्म में ये मन, प्राण तथा वाक् रूप में है। वेद में इन्हें ही इंद्र वायु तथा अग्नि कहा गया है। इसका सीधा अर्थ है परमेष्ठी, सृष्टि समष्टि तथा व्यष्टि में मन तत्त्व व्याप्त है। गीता के अध्याय सात श्लोक 4-5 में पंचभूत तथा मन, बुद्धि, अहंकार को अपरा प्रकृति और चेतना तत्त्व को परा प्रकृति कहा गया है।

पातंजल योग में चित्त (मन, बुद्धि, अहंकार) की परिभाषा में कहा है – 'दृष्ट दृश्य उपरक्तचित्तं सर्वार्थम् (वि. पा. पातं 23) दृष्टा और दृश्य से उपरक्त (सम्बद्ध) हुआ चित्त सारे अर्थों वाला (आधार वाला) होता है। इस सूत्र से मन की अनेक विशेषताएँ प्रकट होती हैं– जैसे सात्विक गुण का विषम परिणाम प्राण के साथ प्रसवधर्मी, परिणामी, अचेतन चेतन के साथ उपरक्त (सम्बद्ध) दोनों से गदरीला रूप है। चित्त केवल संहत्यकारी होता है, भोक्ता नहीं, भोक्ता जीव है। योगसूत्र 24 देखें 'तत् असंख्ये वासनाभिः चित्रम् अपि परार्थ संहत्यकारित्वात्' (वि. 41 पातं.)। संहत्यकारितत्व का अर्थ ही विनिर्माण होता है। इसी अर्थ में दृश्य तथा श्रव्य को चित्त का विनिर्मिता कहा जाता है। ये ही मन पर संस्कार है जो बनते, बिगड़ते रहते हैं।डॉ. वगीश जी 'यथानाम तथा गुण' युक्त लगे। बहुत-बहुत धन्यवाद, इस सारस्वत रसास्वादान के लिए।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 65

सहयोगी वृंद

1. **श्री रमेश दुआ, प्रबंध निदेशक**
रिलेक्सो फुटवीयर लिमिटेड
मंगलम् पैलेस, अग्रवाल सिटी स्क्वायर
सेक्टर -3, रोहिणी, दिल्ली - 110085

2. **श्री भूपेंद्र कौशिक**
डी-13, रोज अपार्टमेंट, सेक्टर-14 एक्सटेंशन
रोहिणी, दिल्ली - 110085

3. **श्री विनायक डालमिया**
3 सिकंदरा रोड़, नई दिल्ली - 110001

4. **डॉ. विद्यानाथ झा 'विदित'**
विद्यापति नगर, काँके रोड
राँची, झारखंड - 834008

5. **श्री सुरेंद्र कुमार पालीवाल**
मकान नं 504/22, प्रभु नगर
सोनीपत, हरियाणा - 131001

6. **श्री अतुल गुगलाणी**
318, तरुण एन्क्लेव
पीतमपुरा, दिल्ली - 110034

7. **श्री गजेंद्र सोलंकी**
97-ए, यू एंड वी ब्लॉक
शालीमार बाग, दिल्ली - 110088

8. **श्री सुनील गुप्ता**
212, तरुण एन्क्लेव
पीतमपुरा, दिल्ली - 110034

9. **श्री एस. सी. महापात्रा**
डी-14, रोज अपार्टमेंट, सेक्टर-14 एक्सटेंशन
रोहिणी, दिल्ली - 110085

10. **श्री अर्जुनदेव तनेजा**
ए-53, पुष्पांजलि एनक्लेव
पीतमपुरा, दिल्ली - 110034

11. **श्री अशोक महाजन**
डी-84, पुष्पांजलि एन्क्लेव
पीतम पुरा, दिल्ली - 110034

12. **श्री विजय कुमार**
डी-80, पुष्पांजलि एन्क्लेव
पीतम पुरा, दिल्ली - 110034

13. **श्री मोहन लाल जैन**
सी-46, पुष्पांजलि एन्क्लेव
पीतम पुरा, दिल्ली - 110034

MV_October_2017:Layout 1 10/2/2017 12:31 PM Page 66

मंगल विमर्श

सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श **त्रैमासिक पत्रिका**

मुख्य संरक्षक	प्रधान संपादक	संयुक्त संपादक	प्रबंध संपादक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता	ओमीश परुथी	डॉ. रवींद्र अग्रवाल	आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए

₹2000 मात्र

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....

रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. ..... दिनांक.....

बैंक..... भेज रहे हैं,

कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....

पता.....

.....

..... पिनकोड .....

फोन :..... मोबाइल:.....

इ-मेल.....

इ-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in